इन्द्रिय विज्ञान

लेखक

स्वामी स्वरुपानन्द जी सरस्वती

श्री श्री १०८ श्री स्वामी स्वरुपा नन्द जी सरस्वती

आश्रम पलड़ा झाल पो० करौरा जि० बुलन्दशहर

प्रकाशक :- डा. जगदीश कुमार राघव S/o श्री चन्द्रपाल सिंह,
नगला राय सिंह, डा० बरौला अलीगढ़

मूल्यः अध्ययन ही इसका इसका असली मूल्य है।

प्रकाशन प्रकाशकाधीन- प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ

वा तिनते रहित हूं। हे दीन बन्धु कृपालु गुरु इस देह विषे में सगुण रुप हूं वा निर्गुण रुप हूं, देव हूं वा मनुष्य रुप हूं वा स्त्री रुप हूं, वा पुरुष रुप हूं वा नपुंसक रुप हूं। परे करिके देखने में आता हूं। या ग्रहण रुप हूं व त्याग रुप हूं। पूर्ण प्रकृति वाला हूं या प्रकृति से रहित हूं। अन्त वाला हूं या अन्त रहित हूं सारांश यह है कि अनन्त हूं कि अन्त वाला हूं मधुर रसादि रुप हूं वा तिनते रहित हूं ऋषि हूं वा मुनि हूं। अनेक शास्त्ररीत्यनुसार (25) वा एक सौ पच्चीस वा सत्ताईस आदि प्रकृति रुप हूं वा तिनते रहित हूं। नित्य हूं वा अनित्य हूं प्रकृति रुप हूं वा तिनते रहित हूं व्यापक हूं कि अव्यापक हूं कि असंग हूं कि संगी हूं मैं मृत्यु को प्राप्त होता हूं कि नहीं चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों के प्रकाशक और अभिमानी सूर्यादि देवता रुप हूं वा तिनते रहित हूं वाकादि कर्मेन्द्रियों के अभिमानी अग्नि आदि देवता रुप हूं कि तिनते रहित हूं। तैसे ही मन आदि अन्त: करण चतुष्टय के अभिमानी चन्द्रमादि देवता हूं कि नहीं मनादिकों के संकल्पादि धर्म रुप हूं वा नहीं तात्पर्य यह है कि पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और अंत:करण चतुष्टय और शब्दादिक चतुर्दश श्रोतादिक इन्द्रियों के विषय तथा चतुर्दश तिनके देवता आदि चतुर्दश त्रिपुटी रुप हूं वा नहीं वा तिनते रहित हूं। वा श्रोतादिक इन्द्रियों के वधिरत्वादिक धर्म रुप हूं वा तिनते रहित हूं तथा दूर हूं कि समीप हूं लम्बा हूं कि चौड़ा हूं वा ऊर्ध्व रुप हूं कि अधोरुप हूं व दिशवा उपदिशा रुप हूं वा तिनते रहित हूं। प्रागादि तीर्थ रुप हूं वा नहीं वा प्रयागादि तीर्थों के अभिमानी वेणी माधव आदिक हूं वा नहीं वा वक्र रुप हूं वा अवक्र रुप हूं वा पुत्र रुप हूं। मातादिभाव ते रहित हूं समव्यष्टित रुप भूर्वादि ऊपर के लोक हूं वा अतुलादि नीचे के लोक हूं अथवा तिन लोकों में रहने वाला हूं कि नहीं रसादि सप्त धातु हूं वा नहीं वा आकाशादि पंचभूतों के शब्दादि गुण रुप हूं वा तिनते रहित हूं वा कोई उत्तम पदार्थ हूं वा कोई निकृष्ठ पदार्थ वा जागृत रुप हु वा स्वप्न हूं वा सुषुप्ति रुप हूं वा तुरिया रुप हु वा तुरिय तीन हूं। वा जागृत स्वरुप हूं वा सुषुप्ति के अभिमानी विश्व तेजस प्राज्ञनामा जीव हूं वा जाग्रत स्वप्न,

इन्द्रिय विज्ञान

लेखक
स्वामी स्वरुपा नन्द जी सरस्वती

श्री गणेशाय नमः

वन्दितानि दिगन्तानि यस्यानन्दाम्बुविन्दुना।

पूर्णानंद प्रभु बन्दे सानन्दक स्वरुपीणम्॥

इन्द्रिय–विज्ञान

(मंगला चरण)

जो अज्ञेय होकर सम्पर्ण वेदान्त वाक्यों से जाने जाते हैं । उन परमानन्द स्वरुप सदगुण देव श्री गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूं।

उन सरहित संत शिरोमणि नित्य अद्वितीय आनन्द रस स्वरु अति महान और नित्य–अपार–दयासागर महात्मा गुरुदेव को नमस्कार है–नमस्कार है।

उन श्री गुरुदेव की कृपा से आज मैं बन्धन से कृत कृत्य हो जाऊंगा।

श्लोक – गुरुब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुं देवो महेश्वरा।

गुरुदेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अर्थ– गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महेश्वर है, गुरु ही परब्रह्म है ऐसे गुरु महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

कैसे गुरु महाराज है कि जिनके लिये नमस्कार करता हूं? नित्यमुक्त, पूर्ण ब्रह्म, सनातन, उत्तम पुरुष, परमधाम, परमगति, शुद्धात्मा, स्वयं प्रकाश, एक रस, स्वतन्त्र, श्रेष्ठ, परात्पर, परम पवित्र, परमात्मा, निराकार, निर्विकार, निरवयव, निरन्जन, निर्गुण, अद्वैत, अरुप, अखण्ड, अज, अचल, अचत्युत, अक्षर, अव्यक्त, अगोचर, अप्रेमय, अचित्य, अनन्त है।

फिर कैसे हैं गुरु महाराज के चरण कमल हस्थ, नेत्रादि, अव्यव, अनुपम, महासुन्दर, मनोहर, हैं । जिनके अंग की प्रतिमा सूर्य की किरणों के समान स्वयं प्रकाशित हैं। ऐसे गुरु महाराज के चरण कमलों में नमस्कार है॥ इति।

ओ३म्–श्री गुरुदेवाय नमः।

गुरु-शिष्य सम्वाद

(प्रथम सर्ग)

शिष्य – हे भगवान इस संसार रुपी देहमन्दिर में मैं कौन हूं क्या श्रोत्रादिक ज्ञानइन्द्रियों का समूह हूं, अथवा एक–एक ज्ञानेन्द्रिय हूं। एक–एक बाक् आदिक इन्द्रिय रुप हूं, प्राणादिक वायु, आंकार समुदाय रुप हूं। या एक–एक प्राणादिक वायु रुप हूं। मन आदिक चतुष्टय अन्तःकरण रुप हूं। वा मन बुद्धि आदिक एक–एक रुप हूं। स्थूल सूक्ष्म रु जो आकाशदिक पंचमहाभूत है उनका समुदाय रुप हूं। वा आकाशादिक एक–एक रुप हूं वा तीन्हो का कार्य रु जो देह सो हूं। काम क्रोधादिक पच्चीस प्रकृति रुप हूं। स्थावर रुप हूं। वा जंगम रुप हूं। व्यापक रुप हूं। परिच्छिन्न रु हूं। परमाणु रुप हूं। अपरमाणु रुप हूं। भूतपिशाचादि रुप हूं किसी का प्रतिबिम्ब हूं, या बिम्ब रुप हूं।

हे गुरुजी मैं जीव हूं या ईश्वर हूं या ब्रह्म हूं या जड़ रुप हूं व चेतन रुप हूं। वा सर्व शक्तिमान हूं वा सर्वशक्तिमान सहित हूं, माया और अविद्या करिके मोहित हूं। सुख दुख का कारण जो धर्मा–धर्म उन वाला हूं। वा तिनते रहित हूं। धर्मा–धर्म का कार्य जो सुख दुख उनका भोक्ता हूं व अभोक्ता हूं। क्रिया वान हूं, व अक्रिय हूं शान्ति आदि मन के धर्म रुप व धर्मी रुप हूं वा तिनते रहित हूं। समाधि रुप हूं। विक्षेप रुप हूं वा तिनते रहित हूं। रुपादिक विषय रुप हूं वा तिनते रहित हूं नित्य हूं वा अनित्य हूं दृश्य हूं व दृष्टा हूं वा दृष्य दृष्टा उभय रुपहूं, ब्रह्मचारी आदि आश्रमी हूं

क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, लज्जा, अलज्जा, घृति, भय, अभय, शान्ति, अशान्ति, यथार्थ ज्ञान, अयर्थात, स्मृति, अस्मृति, दंभ, अदम्भ, मान, अमान, सर्वमान का शुभाशुभ, स्फुरण दर्द, शोक, ध्यान, अध्ययान, बन्धन, मोक्ष, ग्रहण, त्याग, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, मुर्च्छा समाधि, आदि का सरांश यह है कि दैवी, आसुरी गुण वा मन सहित सर्व मन के धर्म जिसकर सिद्ध होते हैं सोई तुम्हारा आत्मा स्वरुप है। जितने मन के धर्म थे सो धर्म किसी न किसी प्रकार से प्रत्येक इन्द्रियों के साथ थे तो ये समझ नहीं आया कि कौन सा धर्म किस इन्द्री का है क्योंकि सबका न्यूनाधिक सम्बन्ध था जैसे अनेक प्रकार का अनाज होता है। और उस अनाज को जब एकत्र किया जाये तो किस नाम से पुकारा जायेगा। जैसे कोई वैश्या का पुत्र हो तो उस पुत्र को किस जाति का कहकर पुकारा जायेगा क्योंकि उसका विजातीय सम्बन्ध है उसकी न कोई जाति है न कोई वरण और जब इसका अन्विरेक किया जाये गेहूं-गेहूं में चना, चना में, जौ-जौ में, मटर-मटर में आदि मिला दिये जाये तो उस अनाज का सजातीय सम्बन्ध हो जायेगा। इसी प्रकार विवेकी विद्वान पुरुष इन्द्रियों के विषयों को समझे कि कौन सी इन्द्रिय का कौन सा विषय है और जिस इन्द्रिय का जो विषय है उसको सुपुर्द किया जाये तो उसका विषय था उसी को सुपुर्द करिके फिर मन का धर्म अर्थात् मन का विषय अथवा मन का क्या धर्म है अब इनका धर्म अथवा विषय पूछे तो सावधान होकर सुन।

चक्षु इन्द्रिय का विषय रुप क्या है। घ्राण इन्द्रिय का विषय रसास्वाद क्या है । त्वचाा इन्द्रिय का विषय स्पर्श का है । इनके ये एक -एक विषय हैं। और अब मन के विषय देखने चाहिये, कि मन के क्या धर्म हैं। जब मन के वर्मो का विचार किया जाये तो शायद मन धर्मों की गणना न की जा सके । क्योंकि मन के धर्म अनन्त हैं। संकल्प, विकल्प सुख-दुख, काम क्रोध लोभ, मोह, अहंकार, भय, अभय, लज्जा अलज्जा, धर्म -अधर्म, मान, अमान, बन्धन मोक्ष, पाप, पुण्य, मरण, मूर्च्छा,

सुषुप्ति रुप हूं वा तिनने रहित हूं वा व्यष्टि स्थूल शरीर हूं वा व्यष्टि, सूक्ष्म शरीर हूं वा व्यष्टि कारण शरीर हूं। वा स्थूल, सूक्ष्म कारण समष्टि रुप हूं या तिनते रहित हूं वा पंचकोश रुप हूं वा तिनते रहित हूं वा वैखरी, मध्यमा, पश्चंती, परावाणी रुप हूं वा तिनते रहित हूं वा समष्टि कारण शरीर हूं व समष्टि सूक्ष्म शरीर हूं वा समष्टि स्थूल शरीर हूं वा तिन स्मष्टि स्थूल आदि शरीरों के अभिमानी, विराट, हिरण्य गुभ, ईश्वर क्रम ते हूं वा समष्टि अभिमान से रहित हूं वा सत्व-गुण रुप हूं वा रजोगुण रुप हूं वा तमोगुण रुप हूं वा तिनते रहित हूं वा देवी सम्पदा रुप हूं दभादिआशुरी सम्पदा रुप हूं षट्अभिमान हूं वा नहीं हूं वा षटभाव विकारवान हूं वा नहीं हूं श्रोत्रादिक इन्द्रियों का तथा मनादिक का विषय हूं वा अविषय हूं तात्पर्य यह है कि मनादिक इन्द्रियों के द्वारा मैं जानने में आता हूं कि नहीं वा स्वप्रकाश हूं या कर्मवान हूं वा नही या कर्म उपासना का फल भोगता हूं कि नहीं तथा कर्म और उपासना का मैं कर्ता हूं कि कोई अन्य कर्ता है और मैं निष्कर्तव्य हूं कि सकर्तव्य हूं वा बन्धन रुप हूं वा मोक्ष रुप हूं वा तिनते रहित हूं वा कारण स्वरुप हूं कि कार्य स्वरुप हूं वा तिनते रहित हूं वा गुरु के उपदेश वा शास्त्र द्वारा मैं जानने में आता हूं कि नहीं वा देश काल वस्तु स्वरुप हूं वा तिनते रहित हूं। वा नाम स्वरुप हूं वा तिनते रहित हूं।

हे गुरुजी मैं आदि हूं कि अनादि हूं कि सच्चदानन्द स्वरुप हूं कि नहीं व यज्ञदान आदि रुप हूं कि तिनते रहित हूं, पंडित हूं कि अपंडित हूं, स्वामी हूं कि दास हूं, स्थावर हूं कि जगंम हूं बालक हूं कि युवा हूं बाल्यकादि अवस्था रुप हूं व नहीं सुन्दर रुप हूं कि असुन्दर रुप हूं कि अन्धकार रुप हूं कि प्रकाश रुप हूं कि तिनते रहित हूं कि लक्ष्य रुप हूं व वाच्य रुप हूं देयोपादेय रुप हूं कि तिनते रहित हूं । वा कर्म रुप हूं कि अकर्म रुप हूं कि सब जमत का उपदान कारण हूं अज्ञान वा माया रुप हूं वा तिनते रहित हूं । आदि उक्त पदार्थों के मध्य में मैं कौन हूं। हे शान्ति दायक हे

कृपालो सर्व हित तुच्छ सर्व शिष्यों के संताप नाशक करुणानिधे हे अज्ञान नाशक दीन बन्धो हे यथादर्शी। हे संश विध्वंसक सदगुरो इस संश रुपी समुद्र से आप कृपा करके मुझको पार करो क्योंकि मैं तुम्हारी शरण में आया हूं। इस प्रकार श्रृद्धावान शिष्य की रस भरी वाणी सुनके श्री गुरु महाराज मुनि ने सर्व प्रश्नों का केवल एक ही उत्तर में समाधान किया।

(द्वितीय सर्ग) ।। गुरु उवाच ।।

उत्तर– हे सौम्य पूर्वोक्त जो तुमने देह से लेकर अज्ञान पर्यन्त सब कहे हैं सो तू ही नहीं है क्योंकि अज्ञान और अज्ञान का कार्य जो सर्व पदार्थ हैं परस्पर व्यभिचारि हैं परस्पर अपेक्षा वाले हैं। आपस में कार्य कारण भाव वाले हैं। चेतन्य के दृश्य हैं देश काल वस्तु परिच्छेद वाले हैं। जड़ भाव विकार वाले हैं। (प्रतिक्षयतादि) असत्य दोष वाले हैं। भ्रम ज्ञान के विषय हैं। जड़ हैं। वाचारम्भणमात्र हैं। स्वप्न वत प्रतीत मात्र हैं। अविद्या के परिणाम चेतन्य के विवर्त हैं और रज्जु में सर्व की तरह मिथ्या हैं। तुम्हारे स्वरुप विषे कल्पित प्रतीतमात्र होते हैं। स्वप्न दृष्टा की न्यायी है वस्तुत सत्य नहीं है।

हे शिष्य वास्तव में जो तुमने देह से लेकर अज्ञान पर्यन्त पूर्व पदार्थ कहे हैं तथा अन्य भी अनेक पदार्थ है सो सर्व मन वाणी के गोचर हैं और तुम्हारे स्वरुप तो मन वाणी का विषम नहीं है। सोसाक्षात कहने को हम भी सामर्थ नहीं हैं। तैसे हो तुम भी उसको साक्षात दृश्य रुपता करिके जाने को सामर्थ नहीं। काहे ते कि सर्व जीव जिस विषय सुख को नित्य प्रति अनुभव करते हैं वह जो शब्द विषय जन्य सुख है। तिसको भी हम साक्षात दृश्य की न्याई कहने को तथा जानने को कोई भी सामर्थ नहीं होता तो सर्व प्रकार से सर्वमन इन्द्रियों का अविषय होने से सर्व का आत्म

स्वरुप सुख है तिसको साक्षात किसी बहाना बिना विद्वान भी कैसे कहेंगे और कैसे मुमुक्ष जानेंगे किंतु कहना और जानना दोनों ही हो सकता है जैसे मन करिके भी अचिन्तनीय रचना जिसकी ऐसा जो यह जगत है तिस जगत की उत्पत्ति पालन और संहार रुप व्यवहार जो करने वाला है सोई जगत का स्वामी आत्मा है। इस तटस्थ लक्षण (सारे जगत को) कर जैसे आत्मा जानने में आता है। तथा जैसे चित्रों को देखकर चित्र लेखा का होना अनुमान किया जाता है। तैसे ही सुबुद्धिमान शिष्य सुख दुखादि सर्व पदार्थ जिस करिकै सिद्ध होते हैं वही तुम्हारा आत्मा स्वरुप है तथा जो मन के फुरने ते पहले स्वत: सिद्ध है। पुन: मन के शुभा: शुभ फुरने का जो साक्षी रुप करिकै जो निर्विकार स्थिति है। पुन: मन के फुरने के अभाव का जो अवधि रुप करिकै स्थित है सो ही तुम्हारा आत्मा स्वरुप है तथा जैसे छ: प्रकार के रुप की न्यून अधिकता को परिणाम करने वाला चक्षु इन्द्रिय रुप से भिन्न सर्व रुप के विकारों से रहित रुप का उपचारक दृष्टा है तथा जैसे शब्द से भिन्न शब्द विकारों से रहित शब्द का उपचारक ज्ञाता है तथा जैसे गंध के उत्तम मध्यम भाव को तथा गर्व की उत्पत्ति नाश को परिणाम करने वाला घ्राण इन्द्रिय गन्ध से भिन्न सर्व गन्ध के विकारों से रहित गंध को सिद्ध करने वाला दृष्टा है। जैसे छ: प्रकार के रस की न्यून अधिकता को परिणाम करने वाली रसना इन्द्रिय रस से भिन्न सर्व रस के विकारों से रहित और रस का मुख्य ज्ञात जो आत्मा उसकी उपाधि होने से गौण ज्ञाता रस से भिन्न है जैसे स्पर्श विषय के न्यूनाधिक भाव को परिणाम करने वाला स्पर्श के सर्व विकारों से रहित स्पर्श विषय का उपचारक ज्ञाता त्वचा इन्द्रिय स्पर्श ते भिन्न है। काहे ते रुपादिक पदार्थ भिन्न-भिन्न देश में स्थित हैं। और रुपादिकों को परिणाम करने वाला चक्षु आदिक इन्द्रिय रुप दृष्टा इनके विकारों को स्पर्श नहीं करते तथा रुपादिक पदार्थ अपने दृष्टा चक्षु आदिको जानवे भी नहीं तैसे ही यह आत्मा भी इस देह रुप मन्दिर विषे मन, वाणी के कथन चिन्तन से रहित स्थित हुआ जिस पर काम,

और किसी रीति से भी तू स्वप्न में स्वप्न पदार्थों को नहीं रच सकता । केवल निन्द्रा, दोष संयुक्त करने से ही रचता है ।वैसे ही तू चैतन्य आत्मा मनादिकों का साक्षी आत्मा कोई मिट्टी गिलाय पत्थरादिक कहीं से अन्य सामग्री लेके इस जगत को नहीं रचता है। किन्तु केवल माया रुपी स्फुरने से ही इस नाम रुप जगत को रचती है। फुरने से इस उत्पत्ति होने के कारण यह जगत मिथ्या है।

क्योंकि जैसे कोई जादूगर अपनी सफाई से अनेकानेक पदार्थ उत्पन्न करता है ।तो क्या वे सत्य हो सकते हैं नहीं मिथ्या ही हैं। इसी प्रकार माया रुपी जादूगर ने अपनी फुरना से इस जगत को उत्पन्न किया है। इसलिये यह सत्य नहीं है मिथ्या ही है वर्तमान काल में स्त्री पुरुष के संयोग से पुत्र की उत्पत्ति बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होती है। स्वप्न में झट से ही एक क्षण में पुत्र, पौत्र, माता, पिता, वृक्षादिक उत्पत्ति बिन कारण के एक साथ होती देखी जाती है। तथा बाग बगीचे, पर्वत, नदियां देश काल देखता है सो तीस वा चालीस वर्ष में तथा चालीस बर्ष की आयु के पुत्र पोत्र के सहित सब कुछ देखता है वे कौन सी माता और कौन पिता से उत्पत्ति हुई है सो कह किन्तु निन्द्रा रुपी अविद्या रुपी स्त्री बीजादि करके ही पदार्थ उत्पन्न होते हैं अन्य किसी कारण से नहीं उत्पन्न होते उसके पश्चात जागने पर निन्द्रा रुप अविद्या में ही विन पदार्थों की लीनता होती है । इससे ही निन्द्रा रुप अविद्या द्वारा ही स्वप्न दृष्टा चैतन्य ही दृष्टा फुरने करिके कार्य कारण रुप प्रतीत होता है। वास्तव में स्वप्न प्रपच आदि में भी नहीं तथा जागने पर अन्त मेंभी नहीं रहता। बीच में ही प्रतीत होते हैं। अर्थात मध्य अविद्या से अनेकानेक प्रकार की प्रतीत होते हुए भी आदि अन्त की न्याई मध्य में भी अत्यन्त अभाव ही स्वप्न प्रपच का भी जानना ।वैसे जाग्रत प्रपंच जानना। बल्कि स्वप्न प्रपंच में भी जाग्रत प्रपंच अति तुच्छ है । काहे ते कि स्वप्न प्रपच के यत्किचिंत निद्रारुप अविद्या सहित देश कालादिक कारण पाये जाते हैं। परन्तु देशकालादिक भेद रहित केवल सच्दिानन्द

जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति आदि ये मन के धर्म हैं। वह तो मन के धर्म और अन्त:करण उपहित चेतन्य जीव अपने मानकर दुखी सुखी होता है।

जैसे कोई मनुष्य किराये एक मकान ले तो उस मकान के नियम को निभाना जरुरी है तो कुछ दिन रहकर किरायेदार उस मकान को अपना समझने लगता है यह नहीं सोचता कि यह मकान मेरा नहीं है इसका मालिक कोई और है और मकान के अन्दर क्या-क्या चीजें हैं सो सब बताई जाती हैं। एक पखाना है, एक स्नानग्रह है एक रसोईघर है एक टंकी नल है। एक बिजली आदि का प्रबन्ध है अब इस मकान में आसक्ति करिके कि ये मकान मेरा है और फिर मुकदमे बाजी करके कि यह मकान मेरा है तो उसकी भूल है इसी प्रकार शरीर रुपी मकान है ये पंचभूतों से बना हुआ है और प्रकृति ने निर्माण किया है। इसमें पखाना, पानी, पंखा, नल, रोशनी भी है इसमें और बहुत सी सुविधा है सो आगे और वर्णन की जायेगी।

दृष्टान्त– जैसे कि कोई एक राजा था तो इस वास्ते चार हातों का निर्माण किया ।तीन चार हाथों के अर्थात चार स्थानों में यह है कि जिसको कचहरी कहते हैं। उसमें विजातीय लोग एकत्र होते हैं। और उसमें धर्मा अनुकूल न्याय किया जाता है और एक होता है निजि कि जिसमें परिवार सहित जैसे कि भोजन आदि सब मिलकर किया करते हैं और तीसरा यह कि अपनी रानी के साथ सहवास किया करता था। चौथा होता था कि जिसमें राजा अकेला ही होता है।

दृष्टान्त– इसी प्रकार आत्मा रुपी राजा ने चार हाते नियुक्त किये हैं। कि जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति और तुरिया। जाग्रत में तो सारी इन्द्रियां अपने स्वामी आत्मा की आज्ञा में रहकर अपने- अपने व्यवहार में बरतते हैं ।स्वप्न अवस्था में इन्द्रियों से रहित अपने आभास सहित अंत: करण से व्यवहार करता है। सुषुप्ति अवस्था में आत्मा रुपी राजा अपनी अविद्या रुपी रानी के साथ व्यवहार करता है

तुरिया अवस्था में आपु अकेला ही निवास करता है। और अपने रुप में स्थित रहता है। तथा आनन्द मयी श्रष्टी पास है । पास जो कुछ सम्पत्ति है सब चेतन की है। वासत्व में देखा जाये तो यही सिद्ध है । हे शिष्य इसी प्रकार तू भी आत्म निष्ठा कर जो अपना कल्याण चाहे तो

है । चेतन्य आत्मा वाहक मन चक्षु आदि प्रजा के साथ क्यों राग द्वेष करता है। मन विशेष वान न होवे। एकाग्र होवै। वह बुद्धि भला निश्चय करे या ना करे । चित चिन्तन करे या ना करे। मिथ्या अहंकार करे या न करे। चक्षु अच्छे रुप को देखें या बुरे रुप को देखें। हे शिष्य तू सत न्याय पूर्वक सोच देख । तुझ चेतन्य आत्मा का तो बुरा, भला, शुभ, अशुभ, संकल्प विकल्पादि स्वभाव वह हुआ प्रजा का ही हुआ । यदि बुद्धि आदिक भले पदार्थों का निश्चय करे व समाधि करे तो बुरे पदार्थों का निश्चययदिक तथा विक्षेपादि न करे तो बताओ कि फिर बुरे पदार्थों का निश्चय कौन करे ये आत्मा का तो संकल्प धर्म नहीं है । तथा अन्य इन्द्रियादिकों का भी धर्म नहीं है। तो मनादि बिना विक्षेपादि निश्चय व्यवहार कैसे करेगा किन्तु नहीं होगा। तैसे चक्षु आदिक भले ही रुपादिकों को देखे तो बुरे रुपादिकों को कौन देखे। चक्षु आदिकों के बिना सो कह । काहे ते दर्शनादि व्यवहार चक्षु बिना अन्य का है। नहीं ? तथापि हे शिष्य तुझ चेतन्य निर्विकार साक्षी आत्मा ने ही कल्पित मनादि प्रजा का हर्ष शोकादि भिन्न भिन्न यथा योग्य स्वभाव रचा है । तथापि मनादिक प्रजा के वर्तमान होते हुये भी तिनके धर्मो का अभाव व अन्यथा तुझ से भी नहीं होगा। जैसे स्वप्न के मन चक्षु आदिक इन्द्रिय भी तथा तिन मन चक्षु आदिक इन्द्रियों के धर्म रुपादिक विषय भी स्वप्न दृष्टा ने ही यथा योग्य ही कल्पना करे रचे हैं । परन्तु स्वप्न पदार्थ, स्वप्न दृष्टा से भी स्वप्न पदार्थो के प्रभाव नहीं कर सकता है । क्योंकि मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थों के पूर्व स्वभाव बर्तने से स्वप्न दृष्टा की हानि ही क्या है और मनादिकों के अन्यथा स्वभाव करने से

स्वप्न दृष्टा को लाभ ही क्या है और स्वप्न दृष्टा को उनके अन्य प्रकार के स्वभाव करने में अर्थात विषयों में लम्पट मन इन्द्रियों के स्वभावों का उलटाय के सज्जनों वत अति मन की वृति को अर्न्तमुर्ख स्वरुपाकार करने में यत्न करना क्यों कि स्वप्न दृष्टा की सर्व प्रकार करिके मनादिक दृष्य स्वप्न पदार्थ किन्चिन मात्र भी हानि और लाभ नहीं कर सकते हैं।

इसी प्रकार स्वप्न दृष्टा का कोई तुझ चेतन्य साक्षी आत्मा की यह मनादिक जाग्रति आदिक में वर्तने वाले पदार्थ किसी प्रकार करिके किंचित मात्र भी हानि लाभ नहीं कर सकते । जैसे अनेक प्रकार से प्रकाश में अनेक प्रकार के अन्धकार तथा आदिक विकार उत्पन्न होते हैं और मिट जाते हैं मगर आकाश कोई हानि लाभ कुछ नहीं। इसी प्रकार इन्द्रियां अपने-अपने व्यवहार में बर्तते हैं साक्षी चेतन्य आत्मा को उनके व्यवहार में कोई हर्ष शोक नहीं होता है इसी प्रकार हे शिष्य बुद्धि आदिकों के आत्म निरुपण करने से तुझ चैतन्य प्रकाश का क्या बिगड़ता है अर्थात कुछ नहीं बिगड़ता और जो तु बिगडता माने तो यही भ्रम है।

प्रश्न– हे गुरुजी इस संसार की उत्पत्ति किस किस प्रकार होती है सब समझाकर कहिये ?

उत्तर– हे शिष्य सावधान होकर श्रवण कर । गुरुजी बोले सौम्य इस संसार की उत्पत्ति साक्षात माया के कार्यभूत पंचभूतों का कार्य रुप संघात मैं नहीं किन्तु जिससे इस संघात की कथा संघात के व्यवहार की सत्ता सफर्ति होती है। सो चेतन्य आत्मा द्वारा होती है अन्य कर नहीं । हे शिष्य जैसे तु स्वप्न में स्वप्न पदार्थों में मिट्टी, गारा, पत्थर आदि वहीं से लेकर तथा अस्थि, मांस, रुधिर , मैदा, मज्जा, वीर्यादि सप्त धातु कहीं से लेकर तथा कहीं से पृथ्वी आदि पंचभूतों को लेकर या स्त्री, पुरुष के संयोग कर नहीं रचा है। सूक्ष्म स्वप्न नाडी में स्वप्न पदार्थों के योग्य अन्य देश काल वस्तु कारण भी नहीं हो सकते तात्पर्य यह है कि

है स्वप्न दृष्टा स्वरुप ही है। अगर स्वप्न दृष्टा से हो तो ज्यों का त्यों बने रहें सो देखने में आवे नहीं। इसी प्रकार जाग्रत का संसार ज्ञान होने पर अथवा अज्ञान रुपी निन्द्रा से जागने पर रहती नहीं। जैसे स्वप्न की सृष्टि की जागने पर स्मृति बनी रहती है इसी प्रकार ज्ञान होने पर स्मृति रहती है। इसी को जीवन मुक्ति भी कहते हैं। क्योंकि यहाँ पर अविद्यालेश मानी है। अर्थात जीवन मुक्ति का विलक्षण आनन्द कहते हैं क्योंकि अविद्यालेश है। यहाँ पर मिथ्यापने के संस्कार मौजूद हैं और आगे चलकर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होता है कि न तो कोई सत है और न कोई असत है और न किसी का भाव है। और न किसी का अभाव है सत भाव और अभाव और जो सुख दुख को और जन्म मरण को और पाप पुण्य को जो सिद्ध करने वाला है। सोई सबका दृष्टा है जितनी संसार में वस्तु है कि जिनका कथन किया जाता है और जो कुछ जानने में आता है वे सब दृश्य रुप हैं जो दृव्य पदार्थ होता है सो दृष्टा की सिद्धि नहीं कर सकता है क्यों मनुष्य अपने आपे में ही समझ सकता है कि हमारे शरीर में जितनी इन्द्रियां हैं और जितने इन्द्रियों के विषय हैं वे सब इन्द्रियां अपने अपने विषय को ही सिद्ध कर सकती हैं। विषय इन्द्रियों को सिद्ध नहीं कर सकते और न इन्द्रियाँ ही अपने साक्षी को सिद्ध कर सकती है क्योंकि इनके वहिर मुख हैं। जब वृति आन्तरिक होती है तो सर्व ब्रह्म रुप ही भासता है बड़े विचार की बात है।

क्योंकि वृति द्वारा विचार किया जाय तो न इन्द्रियाँ हैं और न इन्द्रियों के विषय ऐसे सब ना समझी की बात है। शिष्य ने कहा कि गुरु जी अद्वैत ब्रह्म है।

द्वैत नहीं है जैसे विना जाने रज्जु में सर्व भ्रान्ति से प्रतीत होता है और रज्जु का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर रज्जु ही शेष रह जाती है।

इसी प्रकार ब्रह्म को न जानने के कारण ही संसार है जब यथार्थ में ब्रह्म ज्ञान होने पर संसार नहीं है। यों तो हमारी भ्रान्ति है कि हम ठूठ में भूत मान बैठे हैं

निजात्मा के अज्ञान से इस जाग्रत जगत की प्रतीति होती है।

एक कथा:- गुरु महाराज बोले हे शिष्य ईर्ष्या पर एक कथा सुन कि एक राजा था वह राजा एक सन्त के पास दर्शन करने के लिए उसके पास जाया करता था एक दिन प्रश्न किया हे प्रभु यह जगत क्या है आप कौन हो और मैं कौन हूं। सन्त जी बोले कि हे राजन सुन न यह जगत न तू न मैं यह जगत एक आत्मा स्वरुप ही है। तू मैं यह जगत सब आत्मा स्वरुप है। शिष्य ने कहा कि हे गुरुजी जब मैं तू नहीं तो आत्मा क्या है। मैं आत्मा को नहीं जानता। जब गुरुजी बोले कि हे शिष्य आत्मा अव्य है और जो कि तू देख रहा है सो आत्मा तुझसे प्रकाश रखता है। क्योंकि जब तू देख रहा है तूने शास्त्र सन्तों का वचन नहीं सुन था तब तू ब्रह्म शब्द के अर्थ को जानता ही नहीं था। ब्रह्म शब्द का अर्थ ग्रन्थों में लिख रखा है। कोई तुझ चैतन्य से पृथक देशान्तर में वा सम्मुख देश में आत्मा खेलता फिरता नहीं जो कि जानने में आवे। अथवा न जाना जावे परन्तु गुरु से ब्रह्मादिक शब्द नहीं सुना था तभी तू था और अब ब्रह्मादिक शब्द के अर्थ ग्रन्थों में सुने तभी तू था और चेतन्य आत्मा था और जो पूर्व न होता तो ब्रह्मात्मा न होता तो ब्रह्म को कौन सुनता पुन: सुनकर ब्रह्म को जान अपने आत्मा से भिन्न करिकै वा अभिन्न करके हे शिष्य जो वस्तु जानने न जानने में आई तो जानने न जानने वाले का प्रकाश सिद्ध होता है और जो जानने में आवे सो प्रकाश्य सिद्ध होता है जैसे नीलादि रुप को जानने वाले प्रकाशक सिद्ध होते हैं और रुप प्रकाश्य सिद्धि होता है। इससे तुझ चैतन्य आत्मा ही से ब्रह्म प्रकाश रखता है।

शिष्य ने कहा कि हे गुरुजी ब्रह्म को सिद्ध करने वाला कौन है। तब तो गुरुजी बोले कि हे शिष्य सत चित आनन्द स्वरुप तू है। शिष्य ने कहा सत चित आनन्द स्वरुप वस्तु को ब्रह्म कहो चाहे साक्षी कहो नामान्तर का भेद है। नामी का भेद नहीं। तब शिष्य ने कहा कि गुरुजी मैं शरी से भिन्न रुप हूं।

गुरुजी बोले कि हे शिष्य तू शरीर नहीं है। शरीर तुझसे प्रकट हुआ है जैसे स्वप्न दृष्टा शरीर नहीं स्वप्न के शरीरादि स्वप्न दृष्टा से प्रगट हुए हैं।

इतनी बात सुनकर शिष्य हंसा। और बोला कि गुरु जी मेरे में द्वैत क्यों कल्पाते हो । क्योंकि पहले प्रथम तो मुझको अद्वैत कहते हो और अब पीछे कहते हो तू शरीर नहीं जड़ चैतन्य दो पद हुए– मुझ चैतन्य अर्वाच पद में एक पद की भी समाई नहीं तो दो कैसे होवेंगे।

गुरुजी बोले अपने स्वरुप को जाने बिना हे शिष्य यह कहने मात्र है । स्वरुप जानना कठिन है।

तब शिष्य ने कहा कि हे गुरुजी वह कहना और जानना क्या है सो कहो तुझ चैतन्य में कहना जानना हो तो मैं कहूं तू तो दोनों से परे है। हे शिष्य कहना जाना वही है कि जिसके कहने जानने से माया से लेकर देह पर्यन्त व ब्रह्म से लेकर चींटी पर्यन्त सर्व का कहना जानना हो जावै। हे शिष्यका अपरोक्ष का निश्चय तब होता है जब विज्ञान होता है। विज्ञान परोक्ष ज्ञान से होता है और ज्ञान उपासना से होता है। उपासन रुपभक्ति सक होता है भक्ति वैराग्य से होती है । वैराग्य शुभ कर्म के अनुष्ठान से होती है।

।। चतुर्थ सर्ग ।।

प्रश्न– हे गुरु जी श्रवण मनन और निवासन का साक्षात्कार स्वरुप कहो मैं तो अबोध हूं।

तब गुरु जी बोले कि हे शिष्य सुन श्रवण करने वाला चैतन्य के आभास

सहित अन्तः करण और श्रवण नाम अन्तः की वृति और श्रवण करने योग्य शब्द का अर्थ इस त्रिपुटि को प्रकाश करने वाली जो वस्तु है सो ही तू है अन्य नहीं है इसका दृढ़ निश्चय करना जरुरी है।

शिष्य– दृढ़ निश्चय का साधन क्या है सो समझाकर कहो।

गुरु– हे शिष्य जैसे अनेक प्रकार का एक बीज के अन्दर एक ऐसी अंकुर शक्ति होती है कि अनेक रुप रुपान्तर को प्राप्त होती है। पहले अंकुर रुप होता है । फिर मूल रुप होता है । फिर शाखओं के रुप में परिवर्तन होता है । फिर तो वह बड़े रुप में परिवर्तित होने लगता है।

इसी प्रकार एक ऐसी आत्म शक्ति है जो कि वह आत्म शक्ति जब बड़े भारी रुप को प्राप्त होती है तो हम को संसार रुप प्रतीत होने लगती है इसी प्रकार विद्वान भी कथन करते हैं कि सृष्टि से पहले शुद्ध ब्रह्म ही था तो वह ब्रह्म ही संसार रुप है ब्रह्म से पृथक कुछ वस्तु नहीं है अगर कोई ब्रह्म से भिन्न कोई सिद्ध करना चाहता है तो शायद इसका कोई उत्तर न मिल सके क्योंकि कार्य अपने कारण से भिन्न कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकता है । जैसे कोई बाजीगर का बना पेड़ दूसरे पेड़ का उत्पन्न नहीं कर सकता अगर कोई कहे कि ये संसार प्रकृति का कार्य है । तो हमको समझाइये कि प्रकृति क्या है प्रकृति कोई वस्तु नहीं है । मनुष्य अपनी वासना से अथवा स्वभाव के वसीभूत हो करके कुछ का कुछ समझने लगता है। अपने को कुछ और समझने लगता है और संसार को कुछ और समझने लगता है।

जैसे मनुष्य स्वप्न में संसार को अपने से भिन्न देखता है यह नहीं सोचता है कि ये स्वप्न के संसार का आधार औरअधिष्ठान कौन है और जागने पर संसार की समाप्ति कहाँ होती है।

स्वप्न के संसार का अधिष्ठान और आधार स्वप्न दृष्टा ही है उससे भिन्न नहीं

हुआ दिन दिन नाना प्रकार के तपों से सन्तृप्त हो रहा था।

हे गुरुजी अहंकार रुपी व्याघ्र से अत्यन्त व्यथित मुझ दीन को निद्रा से जगाकर आप ने मेरी बहुत बड़ी रक्षा की है। इस प्रकार आनन्द और तत्व बोध को प्राप्त हुये उस श्रेष्ठ शिष्य को प्रणाम करते देख महात्मा गुरु देव अति प्रसन्न चित्त से फिर इस प्रकार श्रेष्ठ वचन कहने लगे।

हे वत्स अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से शान्तचित्त होकर सब अवस्थाओं में ऐसा ही देख कि यह संसार ब्रह्म प्रतीत का ही प्रवाह है । इसलिए यह सर्वथा सत्य स्वरुप ब्रह्म ही है । नेत्र युक्त व्यक्ति को चारों ओर देखने के लिए रुप के अतिरिक्त और क्या वस्तु है?

इसी प्रकार ब्रह्म ज्ञानी की बुद्धि का विषय सत्य स्वरुप ब्रह्म से अतिरिक्त और क्या हो सकता है । तब आत्मदर्शी ने कहा हे गुरुजी मैने जाना है कि मन इन्द्रियों के वश सहित स्वरुप का पाना सत्संग से है। पर यह पराधीन तुच्छ अल्पबुद्धि जीव कैसे ईश्वर होता है। तब तो गुरुजी ने कहा कि हे शिष्य जीव का स्वरुप क्या है। तब शिष्य बोला कि हे गुरुजी जीव का स्वरुप सत, चित्त, आनन्द रुप ईश्वर का है । संत ने कहा सोई सत चित्त आनन्द रुपता इस बुद्धि आदिकों के साक्षी आत्मा में घटे तो तद्रूरत हुई वा नहीं जैसे दहकता, उष्णता, प्रकाशकता महान अग्नि के है सोई चिंगारी में है। महानता तुच्छता अग्नि में नहीं है। बल्कि काष्ट में है।

जहाँ काष्ट बहुत है वहाँ तो अग्नि महान प्रतीत होती है जहाँ काष्ट थोड़ा है वहाँ तो अग्नि की तुच्छता प्रतीत होती है। इसी रीति से समुद्र के जल का और या एक या दो बूंद का जल तथा महाकाश और घटाकाश महाकाश से भिन्न नहीं है।

और भी दृष्टान्त अपनी बुद्धि से विचार लेना ।

क्योंकि एक दिन किसी ने एक छदाम की भांग पीस कर और बड़े ठाठ ते बुखार चढ़ा हो तो बुखार नशा दोनों मिलकर ज्ञान को नष्ट कर देते हैं। इसी प्रकार संसार के पदार्थों में अहंकार रुपी नशा तूने किया है इसलिए विद्या विस्मरण हो जाती है अर्थात आत्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

इन अनित्य पदार्थों का क्या अभिमान करना है और अभिमान भी करना है तो ऐसा कर कि मैं देहादिक नहीं हूं जैसे रज्जु में भ्रम के कारण सर्प की प्रतीत होती है। और उस मिथ्या प्रतीति से ही भय कम्प आदि दुखों की प्राप्ति होती है किन्तु दीपक के द्वारा जिस प्रकार तथा जिस समय रज्जु के स्वरुप का यथार्थ ज्ञान होते ही रज्जु का ज्ञान (आवरण) अज्ञान जन्य सर्प और सर्प प्रतीति से होने वाले भय कम्प आदि (विक्षेप) ये तीनों एक साथ निवृति होते देखी जाती है।

उसी प्रकार आत्म ज्ञान होने पर आत्मा का अज्ञान जन्य यह प्रपंच की प्रतीती और उससे होने वाले दुखों की एक साथ ही निवृति हो जाती है जैसे स्वप्न के पदार्थ की सब एक साथ ही उत्पत्ति होती है और जागने पर एक साथ ही निवृति हो जाती है इसलिए संसार बन्धन से टूटने के लिये तत्व सहित आत्म पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

विरक्त पुरुष का ही आन्तिरिक और बहिरंग दोनों प्रकार का त्याग करना ठीक ह । वहां मोक्ष की इच्छा से आन्तिरिक और बहिरंग संग त्याग देता है। जैसे मनुष्य अपनी छाया के समान केवल आभास रुप से दिखलाई देने वाले इस शरीर का इसके फल का विचार करके सबके समान एक बार बांध कर देने पर महात्मा गण इसे फिर स्वीकार नहीं करते। संत शिरोमणि नित्य अद्वितीय आनन्द स्वरुप अति महान और नित्य अपार दया सागर महात्मा गुरुदेव को नमस्कार है नमस्कार है नमस्कार है। उन दिनों श्री गुरुदेव की कृपा से आज मैं बन्धन से मुक्त हूं कृत कृत्य हूं, संसार बन्धन से रहित हूं तथा नित्यानन्द स्वरुप और सर्वत्र परिपूर्ण

हूं मैं असंग हूं और अशरीर हूं अलिङ्ग हूं और अलक्ष हूं । तथा अत्यन्त शान्त अनन्त अखण्ड और पुरातन हूं अकर्ता हूं और उपभोक्ता हूं अविकारी हूं और अक्रिय हूं शुद्ध बोध स्वरुप हूं एक हूं और नित्य कल्याण स्वरुप हूं। मैं दृष्टा, श्रोता, वक्ता, कर्ता, भोक्ता मैं इन सभी से भिन्न हूं मैं तो नित्य निरन्तर निष्क्रिय असीम असंग और पूर्ण बोध स्वरुप हूं।

मैं न यह जगत हूं न वह ईश्वर हूं बल्कि इन दोनों का प्रकाश (बाह्यन्तर) बहिरंग शून्य पूर्ण अद्वितीय और शुद्ध परब्रह्म हूं जो यह उपमा रहित आनन्द तत्व तू, मैं, यह, वह आदि की कल्पना से अत्यन्त दूर हूं वही नित्यानन्द एक रस स्वरुप और अद्वितीय ब्रह्म ही हूं मुक्षज्ञान स्वरु-से सबका आश्रय होकर समस्त प्राणियों के बाहर भीतर मैं ही स्थित हूं तथा जो जो पदार्थ इन्द्र वृति द्वारा भिन्न देखे गये थे। वह भोक्ता भोग्य सब कुछ स्वयं मैं ही हूं। मुझ अखण्ड आनन्द रुपी समुद्र में यह विश्व रुपी नाना प्रकार की तरंगें माया रुपी वायु के वेग से उठती और विलीन होती रहती है।

जैसे वृद्धि के दोषों से दूषित अज्ञानियों द्वारा आरोपित की हुई वस्तु अपने आश्रय को दूषित नहीं कर सकती जैसे मृग तृष्णा के जल का प्रवाह आश्रय को भूमि खण्ड को तनिक भी गीला नहीं कर सकता है जैसे मेघ आकाश का कोई किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है। तो फिर मेरे ही शरीर के धर्म जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि मुझ में कैसे हो सकते हैं।

शरीरादि उपाधि ही आती है । तैसे ही चली जाती है तथा वही कमां को करती है और वही कर्मों के फल भोगती है तथा यही वृद्ध अवस्था को प्राप्त होती है और यही मृत्यु को प्राप्त होती है मैं तो पर्वत के समान नित्य निश्चल भाव ही रहता हूं मुझे सदा रस और निरवयवकी न किसी विषय में प्रवृति है और किसी से निवृति होना है। भला मैं जो निरन्तर एक रुप धनीभूत और आकाश के समान

पूर्ण हूं तो फिर बताओ कैसे चेष्टा हो सकती है।

इन्द्रिय चित्त विकार और आकृति से रहित मुझ अखण्ड आनन्द स्वरुप को पाप या पुण्य कैसे हो सकते है।

जैसे उष्ण, शीत, अच्छी बुरी कैसी ही वस्तु छाया से छू जाने पर भी उससे सर्वथा पृथक पुरुष का तनिक भी स्पर्श नहीं कर सकती तथा घर को प्रकाशित करने वाले दीपक पर। जैसे घर की सुन्दरता और मलिनता आदि किसी धर्म का कोई प्रभाव नहीं होता वैसे शरीर आदि दृश्य पदार्थों के धर्म उससे विलक्षण उनके साक्षी आत्मा को जो विकार रहित एवं उदासीन है तनिक भी नहीं छू सकते क्योंकि मैं न करने वाला हूं और भोगने वाला हूं और न कराने वाला हूं और भोगने वाला हूं न भुगतने वाला हूं और न देखने वाला हूं न दिखाने वाला हूं। मैं तो सबसे विलक्षण स्वयं प्रकाश आत्मा हूं। कर्तापन भोक्तापन, दृष्टता उन्मत्तता, जड़ता, बन्धन और मोक्ष ये सब बुद्धि की कल्पनाएं हैं । ये प्रकृति आदि से प्रतीत होने वाले केवल अद्वितीय ब्रह्म स्वरुप स्वात्मा में से वस्तु नहीं हैं। प्रकृति में दसों हजार सैंकड़ों और हजारों विकार क्यों न हो उनसे मुझ असंग चैतन्य आत्मा का क्या सम्बन्ध है।

जैसे बादल कभी भी प्रकाश को नहीं छू सकता है। अव्यक्त से लेकर स्थूलभूत पर्यन्त यह समस्त विश्व जिसमें आभास मात्र प्रतीत होता है तथा जो आकाश के समान सूक्ष्म और आदि अन्त से रहित अद्वैत ब्रह्म है वही। मैं हूं।

हे गुरुजी आपकी कृपा और आपकी महिमा के प्रसाद से मुझे यह स्व-राज्य-साम्राज्य की विभूति प्राप्त हुई है वह आप जैसे महात्माओं को मेरा नमस्का हो फिर भी नमस्कार हो बारंबार नमस्कार हो। क्योंकि मैं माया से प्रतीत होने वाले जन्म, जरा और मृत्यु के कारण अत्यन्त भयानक महा-स्वप्न में भटकता

कुशल हों ऐसे लक्षणों वाले पुरुष ही आत्म विद्या के अधिकारी होते हैं और जो सद बुद्धिमान और वैराग्यमान शम दमादि षट् सम्पत्ति युक्त और मुमुक्ष हो उसी में ब्रह्म जिज्ञासा की योग्यता मानी गयी है जो कि ये समझता है कि न मैं आत्मा न मैं जीव न मैं ईश्वर हूं न मैं ब्रह्म हूं न मैं शरीर हूं मै ये नहीं कह सकता कि मैं यह हूं कि मैं वह हूं क्योंकि वह तो गूंगा का गुड़ है न तो मीठा कह सकता है और न खट्टा कह सकता है। गूंगे को मौन ही उपदेश बन जाता है।

इसी प्रकार आत्म ज्ञानी के लिये आत्म निष्ठा अर्थात मौन होना ही एक प्रकार का उपदेश बन जाता है क्योंकि जैसे घड़ा पानी से भरता नहीं तब तक शब्द होता ही रहता है।

और जब पानी से घड़ा भरने से धुनि समाप्त हो जाती है इसी प्रकार जिसको अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो गया है वो तो अपनी आनन्द भूती में मस्त रहता है।

।। षष्ठी सर्ग ।।

आत्म निष्ठा– जैसे कोई किसान अपनी ऊख में से प्रयत्न करके कुछ भाग का वितरेक करके और कुछ भाग का अन्व करता है और सार तत्व को ग्रहण करता है। इसी प्रकार समत्व स्थावर जंङ्गम पदार्थो के भीतर और बाहर अपने को ज्ञान स्वरूप से उनका आधार भूत देखकर समस्त उपाधियों को छोड़कर अखण्ड पूर्ण आत्मा में स्थित रहता है वही मुक्त है और वही ज्ञानी है और संसार बन्धन से सर्वथा मुक्त होने में सर्वात्मभाव सबको आत्मा रुप देखने के भाव से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। निरन्तर आत्म निष्ठा में स्थित रहने से दृश्य का आग्रह (वाद्य) होने पर सर्वात्म भाव की प्राप्ति होती है।

शान्ता दान्त उपरतस्तितिक्षुः यह श्रुतियती के लिये वेदान्त श्रवण के

।। पंचम सर्ग ।।

प्रश्न– ब्रह्म निष्ट किसको कहते है।

उत्तर– हे शिष्य प्रथम तो जीवों को नर तन ही दुर्लभ है । उससे पुरुषत्व और उससे भी ब्राह्मणत्व मिलना कठिन है। ब्राह्मण से भी वैदिक धर्म का अनुगामी होना और उससे भी विद्वता का होना कठिन है।

यह सब कुछ होने पर भी आत्मा और अनात्मा का विवेक सम्यक अनुभव ब्रह्मात्मा भाव से स्थिर और मुक्ति ये तो करोड़ों जन्मों में किये हुये शुभ कर्मो के परिपाक के बिना प्राप्त हो ही नहीं सकते । गुरु कृपा ही जिनकी प्राप्ति का कारण है। वे मनुष्यत्व मुमुक्षुत्व और मुक्त होने की इच्छा और महान पुरुषों का संग ये तीनों ही दुर्लभ हैं किसी प्रकार इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर और उससे भी जिसमें शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मगर मनुष्य तन पाकर जा मूढ़ बुद्धि अपनी आत्मा के दर्शन के लिये प्रयत्न नहीं करते वह अपनी आत्माघाती निश्चय ही है।

वह असत में आस्था रखने के कारण अपने को नष्ट करता है। दुलर्भ मनुष्य देह और उससे भी पुरुषत्व को पाकर जो मोक्ष रुप स्वार्थ साधन में प्रमाद करता है। उससे अधिक मूढ़ और कौन होगा। भले ही कोई शास्त्र की व्याख्या करे, देवताओं का पूजन करें, नाना शुभ कर्म करें अथवा देवताओं को भजे तथापि जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं होगी। क्योंकि धन मृत्यु से नहीं बचा जा सकता है अथवा धन के अहंकार में आकर मृत्यु से बचने को आशा करना भूल का काम है क्योंकि मुक्ति का हेतु कर्म नहीं है यह बात स्पष्ट बतलाई गई है इसलिए विद्वान सम्पूर्ण ब्रह्म भोगों की इच्छा का त्याग कर संत शिरोमणि गुरुदेव की शरण में जाकर उनके

उपदेश किये हुए विषयों में समाहित होकर मुक्ति के लिए प्रयत्न करें और निरन्तर सत्य वस्तु आत्मा के दर्शन में स्थित रहते हुये योगारुढ होकर संसार समुद्र से डूबे हुये अपनी आत्मा का आप ही उद्धार करें।

(इसी पर एक दृश्टान्त सुन)

एक वकील साहब तरक्की पाकर कहीं बाहर जा रहे थे तो क्या देखते हैं कि एक बड़े वेग वाली नदी आई तब तो वकील साहब देखने लगे कि नाव तो परलीपार है। फिर तो वकील साहब नाव की इन्तजारी में इधर उधर घूमने लगे तो थोड़ी सी देर में कुछ यात्री एकाग्र हो गये तो मल्लाह ने देखा कि मुसाफिर काफी इक्ट्ठे हो गये तो नाव वाला तट के पास ही नाव ले आया और मुसाफिरों को नाव में बिठाकर मल्लाह ने नाव खोल दी और चल दिया जब चल दिया तो वकील साहब बोले कि अरे मल्लाह, हाँ बाबूजी भाई ये तो बता कि कुछ पढ़ा लिखा है तब मल्लाह बोला कि बाबूजी मेरे तो बाप भी पढ़े लिखे नहीं थे । अरे मूर्ख एक हिस्सा पानी में गयी। बाबूजी चंचल वृति के थे, फिर बोले मल्लाह भाई तू पढ़ा लिखा तो नहीं ये तो बता कि कुछ मनोरंजन के लिये शतरंज आदि जानता है कि नहीं तब मल्लाह बोला कि बाबूजी मैं खेलकूद नहीं जानता । तब तो बाबूजी बोले अरे भाई तेरी आधी आयु पानी में गई । मल्लाह बोला हाँ बाबूजी इसमें शक नहीं है । बाबूजी से फिर भी न रहा गया और फिर बोले कि अरे मल्लाह भाई पढ़ा लिखा तू नहीं है और मनोरंजन आदि तू नहीं जानता तो बता आगे के लिए कुछ पैसे टके जमा किये के नहीं। मल्लाह बोला बाबूजी रोज कमाना और रोज खाना बच्चों से बचता ही क्या है। तब तो बाबूजी झुंझलाकर बोले अरे मूर्ख तेरी आयु का तीसरा हिस्सा पानी में गया। इसी प्रकार बातचीत करते कराते नाव मझधार पहुंची तो मल्लाह ने देखा कि पीछे पानी में बाढ़ आई तो मल्लाह बोला कि बाबूजी जितनी बातें आपने मुझसे पूछी हैं उतनी क्या आप जानते हैं।

बाबूजी एक दम बोल उठे ओर कहने लगे कि इससे अधिक जानता हूं कि मैने ऐ–डिग्री बो–डिग्री हांसिल करी है। तब तो मल्लाह हंसकर बोला कि बाबूजी आपने तैरना सीखा है, बाबूजी बोले तैरना हाँ बाबूजी। बाबूजी बोले कि भाई तैरना तो हमने नहीं सीखा। मल्लाह बोला कि बाबूजी मेरा तो आप राम राम लो, मल्लाह ने मारी छाल वह तो तैर गया और पानी ने मारी ठोकर नाव उलटकर डूब गयी बाबूजी की सारी डिग्री फेल हो गई।

इसलिए कहते हैं कि संसार सागर अगम्य अपार अथाह है इसको वही पार कर सकता है जिसने तैरना सीख लिया है । इसी प्रकार जो गुरुदेव की शरण में जायेगा तो संसार से पार होने में काई देरी नहीं होगी। बड़े विचार की बात है कि लोग संसार सागर को बड़ा भारी विलक्षण बतलाते हैं तो इस संसार की विलक्षणता देखनी चाहिये कि इसमें क्या विलक्षणता है तो शान्त चित्त होकर विचार करते हैं तो हमको यही नजर आता है कि इस संसार में बड़े–बड़े भयंकर जानवर है इस संसार रुपी समुद्र में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहमता, ममता आदि जानवर आदि बड़े–बड़े तीक्षण दांतों वाले जानवर किलोल (क्रीड़ा) करते है।

जिस मनुष्य ते से जानवर लगते हैं उसका वे उलट पलट करते हैं और जरा आराम से नहीं रहने देते हैं और उसको गेंद बना लेते हैं। इन जानवरों से बचने का उपाय ये ही है कि गुरु महाराज की शरण में जानी ही निर्भयता है और कोई उपाय नहीं अत: ब्रह्म वेताओं में श्रेष्ठ दया अगर गुरुदेव की शरण में जाकर जिज्ञासु को आत्मत्व का विचार करना जरुरी है क्योंकि जैसे जल के ऊपर काई होती है वह बिना प्रयत्न के दूर नहीं हो सकती है।

इसी प्रकार निर्विकल्प आत्मा में यह संसार रुपी काई फेली हुई है यह बिना विवेक के दूर नहीं हो सकती है। जो बुद्धिमान हो विद्वान हो और तर्क वितर्क

और दूसरा पाप कर्म न करिके अर्थात पुण्य कर्म न करिकै ज्ञानी तो पाप कर्म से और पुण्य कर्म से सर्वथा प्रसंङ्ग निर्विकार ही रहता है वह तो अपनी आनन्द भूति में मस्त रहते हैं न तो वे माधौ का तेल लेते हैं न ऊधो को देते हैं। उनकी दुनिया अलग बसी हुई है । उनकी दुनिया कैसी है ऐसे पूछें तो श्रवण कर उनकी सृष्टि निरालम्भ और स्वर्णमयी है अर्थात सब कुछ ब्रह्म स्वरुप ही है। वह स्वयं प्राशमय है। इसी पर एक कथा सुन किसी किसान ने अपने खेत में मक्का बो दीनी वह तो मक्का जब पकने को हुई तो किसान ने देखा कि मक्का में बड़े बड़े कौआ और तोता, गीदड़ आदि जानवर बड़ा शोर मचा रहे हैं तो किसान ने अपने खेत में एक मंच गाढ़ दिया और उस मंच पर बैठ गया और उस मक्का में गीदड़, कौआ, तोता, कूकर, सूकर आदि उपाधियाँ हैं। वे सब मक्का में ही हैं। उस मंच पर कोई उपाधि नहीं है। वह तो मन्च पर सबका दृष्टा बना हुआ बैठा है। इसी प्रकार ब्रह्म वेत्ता भी संसार में रहकर न किसी के पाक कर्म से और न किसी के दुख से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे कमल जल में रहते हुए जल के विकारों से रहित होता है। और सब अज्ञानियों की सृष्टि का हाल सुनिये अज्ञानियों की सृष्टि में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंता ममता आदि इस जीवन रुपी मुठिया से लगे हुये हैं। इन्सा को चैन नहीं बड़ा परेशान है। शान्ति और स्वास लेना चाहता है मगर दुष्वार हो जाता है जैसे कोई पुरुष भार घुस कर सुख और शान्ति की तलाश करे तो शायद उसका प्रयत्न निष्फल हो जाये क्योंकि भार में भार में सुख और शान्ति कहाँ है। इसी प्रकार या संसार रुपी भार में किसी कौने में जाकर देखो तो सुख शान्ति का नामो निशान नहीं मिलने का क्योंकि:-

जिन लोगों के बड़े भाग्य और गुरु कृपा है कि इस चमरियाने से निकाल कर एक अलग दुनिया बसादी है कि जिसका हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि उनकी दुनियां में एक मच्छर के लिये जगे नहीं है तो उनकी सृष्टि में संसार कहां है उनकी

अनन्तर सर्वात्मक भाव की सिद्धि के लिये समाधि का विधान करती है। और अहंकार की शक्ति जब तक बढ़ी चढ़ी रहती है तब तक कोई विद्वान भी उसका एका एकी नाश नहीं कर सकता है क्योंकि निर्विकल्प समाधि में अविचल भाव से स्थित हो गये हैं उनके सिवाय और सबमें अनन्त जन्मों की विक्षेप शक्ति पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है।

जैसे दूध और जल के समान दृष्टा और दृश्य के अलग-2 होने का स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर आत्मा में छाई वह आवरण शक्ति अपने आप ही नष्ट हो जाती है।

फिर तो ब्रह्म और आत्मा का एकत्व ज्ञान रुप अग्नि प्रकट होने पर अविद्या रुपी वन को भस्म कर देती है अविद्या के सर्वथा नष्ट हो जाने पर जब जीव को अद्वैत भाव की प्रप्ति हो जाती है तब उसको पुन: संसार की प्राप्ति का कारण ही क्या रह जाता है। तब आत्मवस्तु का ठीक ठीक साक्षात्कार हो जाने पर आवरण का नाश हो जाता है तथा मिथ्या ज्ञान का नाश हो जाता है तथा विक्षेप जनित दुख की निवृति हो जाती है। सारे प्रपन्च का अभाव होने पर एक प्रारब्ध शेष रह जाती है निध्यासन शील (आत्म चिन्तन में लगे हुए) पुरुष को बाह्य पदार्थो की होती देखी जाती है। फल भोग देखा जाने के कारण श्रुति उसे उसका प्रारब्ध बतलाती है जब तक सुख दुख आदि का अनुभव है तब तक प्रारब्ध माना जाता है क्योंकि फल का भोग क्रियापूर्वक होता है बिना कर्म के कहीं नहीं होता है जैसे पुरुष के जाग जाने पार स्वप्न के कर्म जागने पर लीन हो जाते हैं।

तैसे ही मैं ब्रह्म हूं ऐसा ज्ञान होते ही करोड़ों कल्पों के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं स्वप्नावस्था में जो बड़े से बड़े पुण्य अथवा पाप किया गया हो तो क्या वह जागने पर स्वर्ग नरक का कारण हो सकते हैं जो यती अपने को आकाश के समान असंग और उदासीन भाव से स्थिर रहता है वह किसी भी आगामी कर्म से कभी

थोड़ा सा भी लिप्त नहीं हो सकता। जैसे घड़े के सम्बन्ध से घड़े में रखी हुई मदिरा की गन्ध से आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं होता। उसी प्रकार उपाधि के सम्बन्ध से आत्मा उपाधिक धर्मों से लिप्त नहीं होता।

जैसे कोई शिकारी अपनी लक्ष्य की ओर छोड़ा हुआ बाण अपनी लक्ष्य पर ही शान्त होगा अर्थात अपनी लक्ष्य को वेध कर ही शान्त होगा। इसी प्रकार ज्ञान के उदय से पूर्व किया हुआ कार्य अपना फल दिये बिना ज्ञान से नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार किया हुआ कर्म बिना फल दिये नष्ट नहीं होता। जैसे किसी ने व्याघ्र समझकर गाय की ओर छोड़ा हुआ बाण पीछे उसको गाय जान लेने पर भी बीच में नहीं रोका जा सकता वह तो तुरन्त ही अपने लक्ष्य को बेंध देगा।

इसी प्रकार विद्वान का प्रारब्ध कर्म अवश्य ही बल वान होता है। उसका लक्ष्य भोगने से ही होता है उसके अतिरिक्त पूर्व संचित और आगामी कर्मो का तो तत्व ज्ञान रुप-अग्नि से दग्ध हो जाते हैं। किन्तु हो ब्रह्म और आत्मा की एकता को अथवा अभेद दर्शन कर सदा उसी भाव में स्थित रहते हैं उनकी दृष्टि में तो वे सन्चित और प्रारब्धी और आगामी ये तीनों प्रकार के कर्मो के साक्षी और दृष्टा हैं। वे तो मानो साक्षात निर्गुण ब्रह्म ही हैं। जो मुनि श्रेष्ठ जी हैं वे तो उपाधी के सम्बन्ध को छोड़कर केवल ब्रह्मात्मा भाव में अथवा अपने स्वरुप में स्थित रहता है। उसके प्रारब्ध कर्मो की स्थिति की बात स्वप्न में देखे हुए पदार्थो के जगे हुये पुरुष का सम्बन्ध बताने के समान अनुचित है। जगा हुआ पुरुष स्वप्न के प्रति मासिक देह तथा उस देह के उपयोगी स्वप्न प्रपन्च में काफी अहता ममता अइंद्रता अर्थात मैं पना, मेरा पना और यह पना नहीं करते वह तो केवल जाग्रत भाव यही रहता है।

इसी प्रकार सदा ब्रह्म भाव में रहने वाला पुरुष ब्रह्म रुप में ही स्थित रहता है वह ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं देखता । जैसे स्वप्न में देखे हुए पदार्थों की याद आया करती है वैसे ही विद्वान को भोजन करना और छोडना आदि क्रियाएं

स्वभाव बस अपने आप हुआ करती है। क्योंकि यह देह कर्मो से बना हुआ है। अतः प्रारब्ध भी उसी से समझना चाहिए। अनादी आत्मा का प्रारब्ध मानना ठीक नहीं है कि आत्मा कर्मो से बना हुआ नहीं है। क्योंकि आत्मा अजन्मा नित्य और अनादी है। ऐसा यथार्थ कथन करने वाली श्रुति कहती है फिर उस आत्मा स्वरुप में ही सदा स्थित रहने वाले विद्वान के प्रारब्ध कर्म शेष रहने की कल्पना कैसे हो सकती है। प्रारब्ध तो तभी तक सिद्धि होता है कि जब तक देह में आत्म भावना रहती है और देहात्म भाव मुमुक्ष के लिए इष्ट नहीं है। इसलिए प्रारब्ध की अवस्था को छोड़ देना चाहिए। और वास्तव में तो शरीर का भी प्रारब्ध मानना भ्रम ही है क्योंकि वह तो अज्ञानी के लिये ही है।

क्योंकि माल के ऊपर ही जगार हुआ करती है जिस के पास वित्त (धन है) वह जागरण करो या मत करो ज्ञानी तो निर द्वन्द है वह अपने स्वरुप में स्थित है वह तो बन्द मोक्ष ज्ञान और अज्ञान से रहित है जिस पुरुष को मोक्ष प्राप्त होना है सो मोक्ष को प्राप्त होवो जिसकी मोक्ष अवस्था विषे स्थिति होवे चिदाभाष की तो अवस्था विषे स्थिति नहीं होती क्योंकि कल्पित्त की मोक्ष होती नहीं क्योंकि चिदाभाव की मोक्ष माने तो बनती नहीं क्योंकि चिदाभाष –कल्पत है इससे केवल चिदाभाष रुप जीव का पुरुष नाम नहीं बनता। अधिष्ठान रुप कुटस्थ चैतन्य मोक्ष अवस्था विषे स्थित है जैसे पानी में फेन बुदबुदा तरंगादि प्रतीत होते हैं वो पानी से भिन्न नहीं। जल स्वरुप ही है। इसी प्रकार आत्म विषे बन्ध मोक्ष ज्ञान अज्ञान से सर्व प्रपन्च है ये स्वयं प्रकाश चैतन्य आत्मा विषे कहने मात्र है। वास्तव में है नहीं जैसे सूर्य को अन्धकार तीनों काल में आच्छादन नहीं कर सकता इसी प्रकार संसार प्रपंच भी चैतन्य आत्मा को तीनों काल में भी आच्छादन नहीं कर सकता है।

अज्ञानी के लिये ही रज्जु में सर्प है । ज्ञानी के लिये तो रज्जू है तभी तो अज्ञानी पापों से तृप्त रहता है। पाप दो प्रकार के होते हैं एक तो पाप कर्म करिके

निकल्ना कठिन है। क्योंकि रुधिर , माँस, अस्थि, मज्जा, मलमूत्र रुप इस शरीर के अभिमान को ही नरक कहते हैं। सर्व मलीन वस्तु का यह शरीर रुपी मन्दिर नरक है। कि जिस काया से हित करना ही नरक है।

हे शिष्य तू अपनी चाहना से मलीन देह अभिमान रुपी महान अन्धकूप में पड़ा है। किसी की शक्ति है जो तेरी रक्षा करे इसलिए इस असार शरीर की प्रीति का त्याग कर शरीर अभिमान ही आवागमन का बीज है।

अपने स्वरुप को सांगो पांग जान जो बन्ध मोक्ष के भ्रम से छूटे नहीं तो दु:ख होगा। हे शिष्य इस मलीन शरीर से वैराग्य करना तुझको योग्य है।

शिष्य ने कहा। हे गुरुजी वैराग्य और राग दोनों कहो तब तो गुरु जी कहने लगे कि हे शिष्य वैराग्य यही है कि जो अपने सच्चिदानन्द स्वरुप से पृथक जगत का अत्यता भाव जानना और राग यही है कि आप सहित सर्व ना रुप को सत चित्त आनन्द स्वरुप जानना व असत जड़ दुखमय रुप जगत की भावना त्याग के निज आत्मा में भाव करना यही राग है।

तब शिष्य ने कहा कि हे गुरु जी पूर्वोक्त वैराग्य और रागादिकों का जानना न जानना ये सबका धर्म है मुझ निर्विकल्प निर्विकार चैतन्य का अभाव नहीं क्योंकि जब गाढ़ निद्रा माम सुषुप्ति असस्था होती है तब मन अपने अज्ञान उपादान कारण में लीन होता है तिस काल में न राग विराग की कल्पना है न ज्ञानी न अज्ञानी न बन्ध न मोक्ष न हर्ष न शोक न ग्रहण न त्याग न सुख न दुख न पुण्य न पाप न जीव न ईश्वर न जड़ न चैतन्य न सत न असत न सूक्ष्म न स्थूल न माता न पितादिक किसी की कल्पना नहीं होती न अपने शरीर का वर्णाश्रम की न देवी, आसुरी, गुणों की न धर्म न अधर्म की न ऊँच नीच की न निर्विकल्प की सर्वी कल्प कीन स्त्री पुरुष की न शत्रु मित्र की न जाति पाति की न लेने देने की न जप तप की न संसार असंसार की न साक्षी असाक्षी की न दृष्टा दृश्य की न फुरने अफुरने की न

सृष्टि में संसार कहाँ है उनकी सृष्टि में तो सर्व ब्रह्म ही है। कैसे ब्रह्म मई है ऐसे पूछे तो श्रवण कर।

कि जिस चैतन्य करिके शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गन्ध इन पांच विषयों को श्रोत त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण द्वारा जानता है। और जिस चैतन्य करके अनेक प्रकार के शब्दों को कथन करता है और जिस चैतन्य करिके ग्रहण, त्याग, गमनादि सम्पूर्ण व्यापारों को करता है और जिस चैतन्य करिकै अन्त: करण की जो वृतियाँ हैं संकल्प निश्चय आदि तिनको जानता है तिस चैतन्य का नाम ब्रह्म वेत्तओं ने अज्ञान बताया है। सोई चैतन्य ब्रह्मा के स्वरुप को धारिके स्थित हुआ है। सोई चैतन्य इन्द्रिदिक देवताओं के रुप को धारकर कि स्थित हुआ है। सोई चेतन्य मनुष्य रुप धारि करके स्थित हुआ है सोई चैतन्य घोड़े से आदि लेकर के रुप को धारि करके स्थित हुआ है सोई चैतन्य आकाशादिक पंच भूतों की कारण रुपता करके आकाशादिकों विषेतो स्थित है ऐसा जो एक रुप चैतन्य है सर्व विषे तो ब्रह्म है जिस कारण ते सर्व विषे चैतन्य ब्रह्म स्थित है इस प्रकार की निष्ठा हो जाने पर ही जिज्ञासु ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म वित्त कहा जाता है।

॥ सप्तम सर्ग ॥

हे वत्स अस्ति भांति प्रिय रुप आत्मा सर्वत्र व्यापक है भी परन्तु जहां स्पष्ट अन्त: करण होता है तहां ही सत चित्त आनन्द साक्षी विशेष रुप करिके मान होता है तहां ही इस जड़ संघात की चेष्टा होती है। जैसे उष्णता, प्रकाशता दहकता सूर्य रुपता सर्वत्र व्यापक है भी परन्तु जहां दर्पणादि स्वच्छ पदार्थ होते हैं वहां सर्व लोगों को प्रसिद्ध एक आभास दूसरा समान (तेज) द्विगुण प्रकाशक होता है।

हे शिष्य जैसे राजा का हुक्म अपनी प्रजा पर होता है तथा राजा प्रजा से भिन्न ही होता है तैसे ही देह इन्द्रिय, मनादिक जड़ प्रजा को यह साक्षी आत्मा ही

अपनी महिमा में स्थित होता हुआ निज सत्ता स्फूर्ति देकर ही चेष्टा करता है तथा आत्मा देह इन्द्रिय मनादि प्रजा से भिन्न है तथा देह इन्द्रिय मनादि प्रजा के कर्तव्यों से अकर्तव्य है जैसे चन्द्रमा बादलों के चलने से चलता बालकों को प्रतीत होता है। परन्तु विवेकी की दृष्टि में चन्द्रमा अचल है। हे शिष्य पावन मात्र मन वाणी का गौचर नाम रुप प्रपंच है तथा दुख सुख है सो सर्व मोनो मात्र है। क्योंकि जब मन सुषुप्ति में लीन होता है तब सर्व नाम रुप प्रपंच मनोमात्र न होता तो सुषुप्ति में प्रतीत होता नहीं इससे मनोमात्र की ही कल्पना है।

आत्मा तो सर्वदा एक रस सुषुप्ति में भी है परन्तु सुख–दुख रुप प्रपंच नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि आत्मा सुख–दुख रुप प्रपंच से रहित निर्विकार है।

हे वत्स नामरुप संसार को दधि रुप जानो मन को मट्ठा रुप जानो ब्रह्माकार वृति को रज्जु रुप जानो और सतचित्त आनन्द निज रुप प्रत्येक आत्मा को घृत रुप जानो। इस प्रकार अभ्यास करते–करते तुझको अपना स्वरुप साक्षात्कार होगा। पुनः नाम रुप प्रपंच रुप छाछ में तू प्रत्येक चैतन्य रुप माखन पड़ा भी एक रुप न होगा।

हे सौम्य जैसे दीवार अथवा खम्भे में या अन्यत्र कहीं वस्त्रादिकों में चितेरे की लिखी जो अनेक प्रकार की मूर्तियाँ विशेष हैं सो यद्यपि मूर्खों की मूर्ति ही सम्मुख दिखाई जाये अर्थात मूर्ति सामने दीखती है मगर खम्भ–दीवार वस्त्रादि आधार सम्मुख नहीं दिखता अगर विचार किया जाये तो यही सिद्ध होता है कि मूर्ति दृश्य है। और आधार अदृश्य है।

परन्तु विचार किया जाये तो आधार दर्शन पूर्वक ही सर्व मूर्तियों का दर्शन है ।जो आधार को अदृश्य मानें और मूर्तियों को प्रत्यक्ष माने तो दृष्टि विरोध है तथा विद्वानों से विरुद्ध है।

तैसे ही यह नाम रुप भूत भौतिक कारण कार्य रुप प्रपंच, अंडज, जरायुज स्वदेश, उभ्दिन्न रुप मूर्तियाँ ही मन रुप चित्र की अनन्त चित्तसुरूप आत्मा रुप आधार में ही लिखी प्रत्यक्ष दिखती है। परन्तु नित्य सुख चिद्रुप मूर्तियों के आधार आत्मा को अप्रत्यक्ष मानते हैं। अर्थात अविवेकी दूर मानते हैं। यह नहीं जानते कि आधार दर्शन पूर्वक ही नाम रुप मूर्तियों की प्रतीति होती है अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह है कि पहले आधार होता है । पीछे मूर्तियाँ लिखी जाती हैं। यह नहीं कि आधार को परोक्ष मानें और मूर्तियों को अपरोक्ष माने यह मूर्खो की दृष्टि है।

इससे आधार की अपरोक्ष है मूर्तियां नहीं जो मूर्तियों को अपरोक्षता की प्रतीति होती है सो आधार दर्शन पूर्वक ही प्रतीति होती है इससे चैतन्य आत्मा ही सर्व आधार रुप पहले से ही सिद्ध है।

भावना में ही मूर्तियां है और भावना आधार रुप है क्योंकि भावना बनाने की कोई फक्ट्री नहीं खुली है कि जिसमें भावना बनाई जाती है। जैसे अग्नि से अनेक चिंगारियाँ निकलती हैं विचार करके देखा जाय तो अग्नि से भिन्न नहीं हैं सर्व आधार अभिन्न आत्मा ही है।

हे शिष्य कहीं ऐसा न हो कि पूर्वोत्तक शास्त्रों के वाक्यों की व्यवस्था न जानि के शास्त्र श्रवण करिके अपने निज निश्चय का त्याग करें।

वही धीन बुद्धिमान भली है। जो शरीर पात होय तो होय परन्तु अपने निश्चय का त्याग न करें क्योंकि अनित्य शरीर को तो कहीं न कहीं गिरना है । हे सौम्य आप सहित सर्व को सच्चिदानन्द जानना यही मुक्ति है और आपको सच्चिदानन्द जानना अपने मन, आदि नाम रुप जगत भिन्न जानकर तिनमें अहंकार करना यही बन्ध है। निर्भय होना तिसको कठिन है। हे सौम्य यह जगत स्वप्न के समान मिथ्या है। और तू सत रुप है। जिसने आयु को शरीर माना है। तिसको नरक से

से अपवित्र द्वैत से पवित्र होवेगा। ।।इति।।

।। १०८ का क्या मतलब है ।।

श्लोक- षड़विंश विमलंबुद्धम प्रमेय सनातनम।

अर्थ- सतुतं पच्चविशं च चतुविशम बुद्ध यते।।

(महा० शान्ति० ३०८/७)

इस प्रसंग में ब्रह्म २६ जीव २५ और प्रकृति २४ की संख्या से कही गयी है। ब्रह्म इस शब्द में चार अक्षर हैं- व, र, ह, म०।

इन्हें प्रथम, स्पर्श वर्ण ककार गिनना चाहिए। व, क, से २३ वां, र, २७ वां, ह ३३वां और म, २४ वां है। इनको जोड़ने पर २३+२७+३३+२५=१०८ की संख्या आती है जपम १०८ मणियों की माला रखने का यह भी हेतु है तथा जिनको परम श्रेष्ठ ब्रह्म रुप मानते है उन्हें भी लोग श्री १०८ लिखते हैं।

यह १०८ की संख्या (सीता राम इस पूरे पद में उसी रीति से जोड़ने पर आती है।)

<u>सीता</u>- स, ई, त, आ। इनमें : स, क, से ३२ वां ई, आ, से ४ या, ता, क से २६ वां और आ, अ, से २ रा है ३२+४+२६+२=५४

इस प्रकार सीता में (१०८ की आधी संख्या है।)

राम- र, आ, म। इसमें र, के से २७ वां और आ, अ से २ रा और म, क, से २५ वां है:- २७+२+२५=५४। इस प्रकार राम में भी १०८ की आधी संख्या है।

अतः दोनों की संख्या मिलकर (५४+५४=१०८) ही पूर्ण अखण्ड ब्रह्म की संख्या है यही प्रसिद्धि है।

माया रहित अरहित की न आत्मा अनात्मा की न शुचि अशुचि की न हिन्दु मुसल्मान की न भ्रम अभ्रम की। तात्पर्य यह है कि सर्व नाम रुप त्रिपुटी संसार की कल्पना ही नहीं होती।

मैं चैतन्य तो तिस काल में भी हूं जो मेरा पूर्वोक्त संसार धर्म है। जहां चित्त नहीं तहां पर्वोक्त संसार धर्म भी नहीं। हे गुरुजी यह नहीं कि जो चैतन्य सुषुप्ति अवस्था में तो निर्विकल्प निर्विकार बंध मोक्षादि अनात्म धर्म रहित हूं। और अब जाग्रत स्वप्न असस्था में सर्वकल्प सविकार बंध मोक्षादि सहित हुआ है ऐसा नहीं किन्तु जो मैं चैतन्य सुषुप्ति में निर्विकल्प, निर्विकार बंध मोक्षादि रहित था। अब वर्तमान जाग्रत अवस्था में स्वप्न में भी सोई निर्विकार निर्विकल्प। बन्ध मोक्षादि रहित चैतन्य मात्र हूं। इससे माया रुप मन के धर्म है। माया से रहित जो चित्त है तिस के भी धर्म नहीं। ये सब मन अथवा चित्त की जादूगरी है। मनादि के धर्म न होते तो सुषुप्ति में भी होते सो है नहीं। इसलिए ये मन रुपी बाजीगर का रचा हुआ संसार है। शिष्य बोला हे गुरुजी इस संसार रुप बंधन से मुक्त करो। गुरुजी बोले हे शिष्य सर्व शास्त्र विद्वानों के अनुभव से अपराक्ष बन्धन की निवृति सुख की प्राप्ति वास्ते स्वरुप का सम्यक ज्ञान ही साधन है। अन्य नहीं ज्ञान का साधन लोएषणा, पुत्रएषणा, धनएष्णा तथा उन तीनों एषणाओं के अन्तर भूत जो कि लोक वासना, शास्त्र वासना, देह वासनादिकों का त्याग रुप वैराग्य विवेक शमदमादिक है।

जैसे यद्यपि अंधकार के दूर करने का निर्भयता की प्राप्ति का अन्धकार में धरे पदार्थों के दर्शनादिक व्यवहार का साधन दीपक का सचाना ही है अन्य नहीं तथापि दीपक के सम्यक सचाने के वास्ते अनेक प्रकार की सामग्री चाहिए।

हे गुरुजी तिन एषणाओं का त्याग कैसे हो व और वैराग्यादिकों की प्राप्ति कैसे होवे। हे सोम्यतिन एषणादि पदार्थ संघात का धर्म है। तिनके साक्षी आत्मा का धर्म नहीं यह जानना ही एषणादिकों के त्याग ही उपाय है और कोई उपाय

नहीं है। और यही वैराग्य की प्राप्ति का उपाय यही है।

हे पुत्र सच्चिदानन्द निज स्वरुप से पृथक सर्वनाम रुप दृश्य पदार्थों मेंअसत जड़ दुख रुपता सांगोपांग भली प्रकार जैसे है तैसे ही जानना इसका नाम ही दोष दर्शन है।

हे शिष्य देहादिक सर्व अनात्म पदार्थों में आत्म बुद्धि देहादिक सर्व अशुचि पदार्थों में शुचि बुद्धि देहादिक सर्व अनित्य पदार्थों में नित्य बुद्धि तथा देहादिक सर्व दुख रुप पदार्थों में सुख बृद्धि है सो भली प्रकार इस चार प्रकार की अविद्या त्याग कर पूर्वोक्त चार प्रकार की अविद्या से भिन्न आत्मा नित्य शुचि सुख रुप वस्तु है सोई तुम्हारा स्वरुप है तिसी को तू अहं रुप कर के जान। देहादिक संघात में अहं मत मान यही वैराग्य है । जैसे कोई कीड़ी (चींटी) फिरती घूमती को कहीं मिश्री का डला मिल जाये तो कटु पदार्थ तिससे यत्न बिना ही आप ही छूट जाता है तैसे सुख रुप आत्मा को जब तूने अपना आप जाना तो दुख स्वरुप प्रपंच बलात्कार से छूट जावेगा क्योंकि सुख में ही सब प्रवृति होती है दुख में नहीं और सुख रुप तो आत्मा ही है अन्य नहीं यही सर्व शास्त्रों का सिद्धान्त है।

हे शिष्य शास्त्र पढता है और अपने स्वरुप को ही नहीं जानता तो पढ़ना निष्फल है । जैसे कोई पुरुष पराल (फूंस) को कूटकर धान निकालना चाहे तो उसका ये प्रयत्न निष्फल है बिना निजत्व जाने भय रुप से निष्फल है । हे शिष्य तेरी भी मुक्ति होना कठिन है क्योंकि तेरी बुद्धि पुराण शास्त्रों में लग रही है। आपको तू पण्डित परमहंस सर्व ते बड़ा मानता है और अन्य को तू मूर्ख जानता है। क्योंकि गुरु और सत शास्त्रों में तेरी भक्ति नहीं तुझ को स्वरुप प्राप्त करना कठिन है । तब तो शिष्य ने कहा कि अब मैं गुरु शास्त्र में श्रद्धा करुंगा इन्द्रियों का वैराग्य से अष्टांग योग से रोकूंगा परन्तु तत्व ज्ञान का उपदेश करो।

गुरुजी बोले हे शिष्य इन्द्रियों को केवल हट से रोकने से मुक्ति नहीं होती किन्तु

शास्त्र रीति के अनुसार सर्व इन्द्रियों से धर्म पूर्वक यथा योग्य व्यवहार कर और अपन को असंग निर्विकार निर्विकल्प आत्मा जान देह इन्द्रियों को व्यवहार में कृतत्व भोक्तृत्व बुद्धिमत कर।

ये सब अनात्म धर्म है। तू आत्मा चैतन्य अपने धर्म को नहीं त्यागता तो तू आत्मा अपने असंगादि धर्मों को क्यों त्यागता है ये देहादिक अनात्मा तेरा स्वरुप नहीं यह पंच भूतों का स्वरुप है। वा माया का।

हे शिष्य यह मल मूत्र रुप, देह अभिमानी पुरुष ही मेहतरों के बड़े भाई हैं क्योंकि महतर चार घंटे मल का काम करता है फिर नहीं करता यह देह अभिमानी पुरुष तो आठ प्रहर चौसठ घड़ी मलमूत्र रुप देह विर्ष ही अहं बुद्धिपूर्वक विराजमान रहता है । मल के कीड के समान ग्लानि नहीं करता। इससे देह अभिमानी मेहतर से भी अति नीच है। कारण कि मेहतर आयु को मलते जुदा जानता है। और यह देहाभिमानी आयु को मल-मूत्र ही जानता है। इससे स्पर्श करने के भी नहीं जो इस देह अभिमान में बद्ध है सोई पाखाने रुप देह नरक में बद्ध है जो इससे मुक्त सोई मुक्त है।

हे शिष्य इस भोगमय संसार रुप एक वृक्ष के तीन फल हैं मधुर , खाटा, कटु सांसारिक पदार्थ में, काल में मीठे हैं और वियोग काल में खट्टे हैं और शरीर के नाशकाल के कटु होते हैं। जैसे मेवा आदि पदार्थ मधुर होते हैं जल में कुछ दिन रहने से खट्टे हो जाते हैं पुन: वह खटाई पड़ी रहने से कटु हो जाती है।

इससे हे शिष्य अभिमान को त्याग और पवित्र हो नहीं तो मेहतर की तरह अपवित्र रहेगा। जब तू देहादिक का अभिमान त्यागेगा तब देहादिकों के धर्म, हर्ष, शोक आदिक भी तुझको न होवेगा आप सहित सर्व जगत को चैतन्य रुप जान यही परम भजन है। व असंग निर्विकार निविकल्प सच्चिदानन्द साक्षी आत्मा हूं यह असत जड़ दुख रुप संघात देह में नहीं मैं देहादिक दृश्य का दृष्टा आत्मा हूं। इस परम भजन

प्रश्न 3– और हे भगवान इस पूर्व उक्त वचन विषे आपने कथन करा जो कर्म है सो कर्म क्या है अर्थात सो कर्म यज्ञ रुप है अथवा तिस यज्ञ ते कोई अन्य वस्तु है जिस कारण ते (विज्ञानं यज्ञ तनुते कर्मोणि तनुतेणि च) इस श्रुति विषे यज्ञ कर्म दोनों भिन्न–भिन्न ही कथन करें।

प्रश्न 4– हे भगवान भूतों कूं आश्रय करिके जो स्थित होवे ताकू अधिभूत कहते हैं सो अधिभूत आप किसको कहते हो अर्थात ता अधिभूत शब्द करिके आपको पृथ्वी आदिक भूतों को आश्रय करिके स्थित यत्किंचित कार्य विवक्षित है अथवा सम्पूर्ण कार्य मात्र विविक्षित हैं।

प्रश्न 5– और हे भगवान यज्ञ कू आश्रय करिके जो स्थित होवै ताको नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञ यहाँ कौन है अर्थात किसी देवता विशेष का नाम अधियज्ञ है अथवा परब्रह्म का जो स्थित होना है ताको नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञ यहाँ कौन है अर्थात किसी देवता विशेष का नाम अधियज्ञ है अथवा परब्रह्म का नाम अधियज्ञ है सो अधियज्ञ भी इसी अधिकारी पुरुष के किस प्रकार चिन्तन करने योग्य है अर्थात तादात्मय रुप करिकै चिन्तन करने योग्य है तथा सर्व प्रकार से भी सो अधियज्ञ इस देह विषे ही रहे हैं तो भी इस देह विषे सो अधियज्ञ कौन है अर्थात बुद्धि आदि रुप है अथवा तिन बुद्धि आदि को से भिन्न है।

प्रश्न 6– हे भगवान मरण काल विषे श्रोतादिक सर्व करणों का समूह सावधान तै रहित होवे है या तेतिस काल विषे चित्त की सावधानता सम्भवता नहीं ऐसे मरण काल विषे समाहित चित्त वाले पुरुषों ने किस प्रकार करिकै तू जानने योग्य है।

प्रश्न 7– हे भगवन सर्वज्ञ होने ते तथा परम् कृपालु होने ते आपु यह सर्व अर्थ में शरणागत शिष्य के प्रति कथन करो। ॥इति॥

॥ योग अभ्यास ॥

योग अभ्यास का उत्तम जिज्ञासू हो तो गुरु की शरण में जाकर भक्ति भाव से रुके हुए शब्दों का प्रयोग करें और गुरु जी से प्रार्थना करें कि हे गुरुजी कृपा करके योग का उपदेश कीजिये।

॥ गुरु वाच ॥

गुरु जी बोले कि हे शिष्य सावधान होकर सुन। रात्रि के समय जब चारों ओर अन्धकार और सन्नाटा सा छा जाय तब मुलायम बिछौना पर बैठकर योग साधन करें। पहले मुहूर्त में तर्जनी अंगुली से कानों के छिद्र बन्द किय रहें ऐसा करने पर अग्नि तत्व से निकलता हुआ एक प्रकार का शब्द सुनाई देगा। जो प्राणी नियम से कुछ देर भी इस शब्द को ध्यान से सुनता है तो ज्वर आदि विविध प्रकार के उपद्रव आप शान्त हो जाते हैं।

जो प्राणी दो घंटों तक इस नाद को सुनता है। वह धीरे–धीरे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस नाद ब्रह्म का जो रस जो जानने वाला है वह योगी अपनी आकांक्षायें पूर्ण कर लेता है।

वे लोग अभागे हैं जो काल की पाश में बंधे रहते हैं। अर्थात बन्धन में बंधकर शब्द ब्रह्म के जानने की चेष्टा नहीं करते। हां इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। निद्रा सो निद्र और आलस्य को जीत करके सुख पूर्वक आसन पर बैठकर और नाद, ब्रह्म को सुनने का अभ्यास करें। इसका तत्व समझने वालों का कथन है कि इस नौ प्रकार के जो शब्द सुनाई देते हैं। जैसे– धौषा 1। काष्य 2। विजय घन्ट 3। सीगी 4। तुरई 5। घण्टा6। वीणा 7। बांसुरी 8। दुदीभी 9। शंख 10। और मेघ–गर्जना इन नौ प्रकार के शब्दों को त्याग कर केवल एक तुंकार शब्द के सुनने का अभ्यास करें। ऐसा अभ्यास करने वाला योगी पुण्य पाप के बन्धन से छूट जाता है सात दिन के सुनने का अभ्यास करने पर मृत्यु को जीतने वाला शब्द सुनाई देता है।

1- पहला शब्द घौसा के समान सुनाई पड़ता है। इससे आत्मा की शुद्धि होती है।

2- दूसरा विजय घण्टा शब्द प्राणों की गति रोकता है।

3- इससे भूत प्रेतादि शत्रु के उच्चाटन आदि से निर्धुन्द हो जाता है।

4- चौथा घण्टा नाद सरीखा होता है। इसके सुनने वाला सब देवताओं को अपने वश में कर लेता है। तब मनुष्य की क्या बात है। इसके अभाव से यक्ष और गन्धर्वों की कन्यायें आकृष्ट हो जाती हैं। और वे उस योगी की सारी इच्छाएं पूर्ण करके महासिद्धि प्रदान करती है।

5- पांचवे वीणा की ध्वनि जैसी होती है। इससे दूर चले जाने की या अलक्षित हो जाने की सामर्थ्य आ जाती है।

6- बंसी नाद सुनने वाला योगी सब तत्वों को कर लेता है।

7- दुदभी नाद को सुनने वाला योगी जरा मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

8-शंख ध्वनि वाला अभ्यासी योगी जैसा चाहे वैसा रुप धारण कर सकता है।

9- मेघ ध्वनि सुनने वाला सब विपत्तियों से परे पहुंच जाता है।

10- तुंकार ध्वनि को श्रवण करने वालों के लिये कोई भी कार्य अवध्य नहीं रह जाता सर्व दर्शी और काम रुप धारी हो जाता है। योग साधन विधि समाप्त ॥इति॥

॥ कल्युग का वृतान्त ॥

ब्रह्म ने अपनी पीठि से अपने पातकों को पैदा किया वह पातक अधर्म नाम से प्रसिद्ध थे। अधर्म की भार्या मिथ्या थी। उस मिथ्या के गर्भ से एक दम्भ नाम का पुत्र था और मिथ्या के माया नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। और उस माया के गर्भ से लोभ नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। और एक निकृति नाम की कन्या अत्पन्न हुई। लोभ और निकृति के गर्भ से क्रोध नाम का जन्म हुआ। क्रोध के एक हिंसा नाम की बहन उन्पन्न

हुई उस हिंसा के नाम की एक कन्या जनमी। उस हिंसा के गर्भ से क्रोध के से कलि का जन्म हुआ। इसके शरीर कान्ती तेलमिली हुये अंजन के पुत्र के समान काली हुई। कालिका उदर काग के समान हुआ बदन कराल विलोल जीभ अत्यन्त भयानक हुई। तिसकी गंध में सड़ी हुई गंध निकली है। जुआ, मध्य, स्त्री स्वरण में कली का वास हुआ। इस कलि ने दुरुति नामक अपनी बहन के गर्भ से भय और भय के नियने जन्म लिया निरय के एक पातना नाम की बहन जन्मी। निरयने इस प्रकार कलि के कुल में बहुत से अर्थात यातना के गर्भ से कई हजार पुत्र उत्पन्न हुये। इस प्रकार बहुत से धर्म निदकों ने जन्म लिया॥ (कलियुग की कहानी समाप्त)

सूर्य वंशावली

श्री पुरुषोत्तम भगवान

1-ब्रह्म देव के, 2-सावित्री और, 3-मारीचि, 4-कला और, 5-अश्यप के, 6-पुनि और, 7-आपारागण और, 8-भूरुह, 9-सुरसा के यातधान, 10-इलाके, 11-अरिष्टा के-गधर्व, 12-सुरभि-गाई-महिवि, 13-चित्ती के, 14-मरुदण 676, 15-हिरण्यतइ-स्त्रि को, 16-रुकमानु, 17-हरिश्भक्ष, 18-वृक, 19-भूतसतोधन, 20-महानुभ, 21-शकुनि, 22-उत्कल, 23-शम्बर, 24-कालनाम, 25-हरिचन्द्रेश्रु, 26-वृक, 27-भूतसतोधन, 28-महानभ, 29-शकुनि, 30-हिरण्य कश्यप की धर्म पत्नि।

प्रश्न 1- हे भगवन पूर्व ज्ञेयरुप करिकै आपने कथन करा जो ब्रह्म है सो ब्रह्म कौन है अर्थात सो ब्रह्म सोपधिक है अथवा निरुपाधिक है?

प्रश्न 2- हे भगवन आत्मा के सम्बन्ध वाला होवै तो आत्मा शब्द करिके प्रतिपादित जो यह देह है वो देह रुप आत्मा कू आश्रय करिके जो स्थित होवै उसका नाम अध्यात्म है अथवा प्रत्येक चैतन्य का नाम अध्यात्म है।

शंका– जिसकरि करिके केवल बुद्धि ज्ञातता के उत्पन्न करने को समर्थ नहीं है तो भी ब्रह्म चैतन्य रुप फल के विद्धमान होने ते चिदाभास नहीं मान्या चाहता।

उत्तर– फल नाम है घटादिकों की प्रतीतिका सो फल ब्रह्म चैतन्य नहीं होता जिससे नेत्र आदिके प्रमाण की प्रवृति के प्रथम भी ब्रह्म चैतन्य मौजूद था इससे फल को उत्तर कालविषे होने ते ब्रह्म चैतन्य फल नहीं होता ताते नेत्र आदिक प्रमाण की प्रवृति से उत्तर घटाविषे प्रकट भया जो चिदाभास है सोई फल है ताते चिदाभास अवश्य अंगीकार करना चाहिये।

शंका– यह जो तुमने कहा कि ब्रह्म चैतन्य फल नहीं सो तुम्हारा कहना सुबुद्धिमान के वचनों से ओर सुरेश्वराचार्यि के वचन से विरुद्ध है कैसे विरुद्ध ऐसे पूछे तो श्रवण कर अजात्म पदार्थों विषे प्रमाण की प्रवृति के हुवां प्रमाण की फलरुपता करिके अंगीकारकी जो चैतन्य वस्तु है सोई वेदान्त वाक्यरुप प्रमाण करिके जानने योग्य है अर्थ यह है कि सुरेशवराचायिका वचन है तिस करिके ब्रह्म चैतन्य फलरुप प्रतीत होता है जिस करिके वेदान्त वाक्य प्रमाण करिके जो जानने योग्य ब्रह्म है।

उत्तर– सुरेश्वराचार्य के वचन का यह अर्थ है कि फल ब्रह्म चैतन्य जैसा होता है

शंका– यह सुरेशवराचार्य के वचन का तातपर्य तुमने कैसे जाना।

उत्तर– सुरेशवराचार्य के गुरु जो श्रीमत्शंकराचार्य है तिनों के उपदेशहस्त्री नामग्रथ विषे ब्रह्म चैतन्य और फल चैतन्य का भेद कथन किया है इससे हम जानते हैं जो सुरेश्वराचार्य का यह तात्पर्य है कि इस प्रकार सुरेशवराचार्य के वचन की व्यवस्था न करियेगा तब गुरु के वचन साथ सुरेशवराचार्य का वचन का विरोध आवेगा जिस कारणते ब्रह्म चैतन्य और फल चैतन्य का भेद है तिसकारणते घटविषे प्रकट हुयां चिदाभास घटविषे ज्ञातता को उत्पन्न करै है औरउत्पन्न हुई ज्ञातता को फिर ब्रह्म चैतन्य प्रकासता है जैसे चैतन्य अज्ञानता को।

॥ इति ॥

अब हम कुटस्थ ज्ञान दीपक नामा ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हैं। कि जिज्ञासुओं को मोक्ष का कारण ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान है सो ज्ञान त्वं पदार्थ शोधन से उत्पन्न होता है इस कारणते त्व पदार्थ का शोधन करना चाहिए शोधन नाम है वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ निर्णय कनेका सो लक्ष्य अर्थ त्वं पदका कुटस्थ है और एक चिदाभास तिन में कुटस्थ ने सामान्यता रुपता करिके प्रकाशता है।

और चिदाभास जो है अन्तःकरण में चैतन्य का प्रतिबिंब रुप तिसने पश्चात् विशेष रुपताकारिकै प्रकाश्ता है ॥ जैसे–

जल विषे जो सूर्य का प्रतिबिंब है तिसने विशेष रुपता करिके अन्धकार को प्रकाशता है।

शंका– अंधकार विषे प्रतिबिंब रुप सूर्य के प्रकाशते भिन्न आकासविषे स्थित सूर्य का प्रकाश नहीं देखा जाता है।।

उत्तर– कंध विषे दश बीस प्रतिबिंब रुप का प्रकाश दिखता है दशों प्रतिबिंब रुप सूर्य के कंध ऊपर प्रकाश की संधि के सीान वही है तिन संबिरुप सीानों को प्रकाशने वाला आकाष विषे स्थित सूर्य का सामान्य प्रकाश प्रतीति होता है जेकर संधियों को सीान विषे तथा आकाश विषे स्थित सूर्य का प्रकाश न होवे तो संधियों के सीान के रुपकी प्रतीति न होवे जिसते बिना प्रकासते रुप की प्रतीति नहीं होती।

और प्रतिबिंब के सूर्य के अभाव हुवा आकाशविषे स्थित सूर्य का प्रकाश अंकार विषे प्रतीति होता है। इसी प्रकार बुद्धि विषे चैतन्य का प्रतिबिंब रुप चिदाभास के प्रकाश करिके युक्त जो अनेक बुद्धि वृतियाँ वह घटज्ञान, पटज्ञानादि रुपों तिनों की संधि की जाग्रत अवस्था विषे और स्वप्न अवस्था विषे प्रकाशने वाला और बुद्धि वृतियों के अभाव को सुषुप्ति और समाधि अवस्थाविषे प्रकाश करने वाला जो कूटस्थ चैतन्य है तिसको चिदाभास ते भिन्न करिके जानना जैसे देह के

बाहर घटादिकों के प्रकाशक चिदाभास और ब्रह्म भिन्न भिन्न हैं तैसे देह के अन्तर देह के प्रकाशक चिदाभास और कुटस्थ भिन्न–भिन्न है सो जैसे है तैसे श्रवण कर एक घट के प्रकाश ने वाला जो बुद्धि विषे स्थित चिदाभास है सो घटमात्र के प्रकाश को करता है और घट विषे जो चिदाभास करिके ज्ञाता रुपी धर्म है व उत्पन्न हुआ ज्ञातो घट: इस व्यवहार का कारण तिस ज्ञातता रुप धर्म को घटक कल्पना का अधिष्टान जो ब्रह्म चैतन्य है तिसने प्रकाश्ता है ॥

शंका–बुद्धि विषे जो चिदाभाष है तिसको अंगीकार करना व्यर्थ है जाते घटकी ज्ञातता के प्रकाशने वाला ब्रह्म चैतन्य करिके घटकी प्रतीति बन जाती है॥

उत्तर– जिकर बुद्धि वृति विषे प्रतिबिंबरुप चिदाभास को न मानोगे तो घटकी ज्ञातता और अज्ञाततारुप भेद सिद्ध न होवेगा स्ते जिस प्रकार है सो श्रवण कर– घटविषे ज्ञानता रुप धर्म और अज्ञाततारुप धर्म काल भेद करिके रहता है जिसते सभी लोग कहते हैं कि मैं घटाकें नहीं जानता और मैं घटकों जान्या है तात यह भेद तेरे मतविषे कैसे सिद्धि होवेगा॥

जिसकर बुद्धि की वृतिविषे चैतन्य का प्रतिबिंबरुप चिदाभास न मानोगे ताते जब बुद्धि का वृत्तिविषे चैतन्य के प्रतिबिंबरुप चिदाभास की घटाविषे प्रघटता होती है तब घटविषे ज्ञातताारुप धर्म की उत्पत्ति होती है और तिसका प्रघटता से प्रथम घटविषे अज्ञाततारुप धर्म रहता है ताते ज्ञातता अज्ञाततारुप धर्म के भेद वास्ते घटके प्रकाशक बुद्धि की वृतिविषे चैतन्य का प्रतिबिंबरुप चिदाभास अवश्य मानना चाहिए॥

शंका– एक घटविषे ज्ञातता और अज्ञातता विरुद्ध धर्म कैसे रहते हैं।

उत्तर– घटविषे ज्ञातता की स्थिति का कारण ज्ञान है और अज्ञातता की स्थिति का कारण अज्ञान है सो ज्ञान किसको कहते हैं। और अज्ञान किसे कहते हैं ऐसा पूछे तो सुन बुद्धि की वृति के अग्रभागविषे चैतन्य का प्रतिबिंब रुप चिदाभास सहित जो

बुद्धि की वृति है सो ज्ञान है।

जैसे अग्रभागविषे चैतन्य का प्रतिबिंब रुप चिदाभास सहित जो बुद्धि की वृति है सो ज्ञान है।

जैसे– अग्रभागविषे लोहे सहित का नाम है बाण तिस ज्ञान करिके व्याप्त हुआ घट ज्ञात कहा जाता है। और जड़ताका नाम अज्ञान करके व्याप्त हुआ घट अज्ञात कहा जाता है। इसते एक घटविषे ही ज्ञानता और अज्ञानता रुप विरुद्ध धर्म ज्ञान और अज्ञान रुप कारण करके बनजाते हैं अर्थ यह है कि ज्ञातता का कारण ज्ञान है। अज्ञानता का कारण अज्ञान है।

शंका– अज्ञात घटको अज्ञन करके व्याप्त होने ते ब्रह्म करिके प्रकाश्यता पर ज्ञान करके व्याप्प होवे जो ज्ञात घट हैं उसको ब्रह्म करके प्रकाश्यता किस कारण ते है।

उत्तर– जैसे अज्ञात घटविषे अज्ञातता को उत्पन्न करता है और अज्ञातता को प्रकाशता नहीं तैसे ज्ञान भी घटविषे ज्ञातता को उत्पन्न करता है ज्ञातता को प्रकाशन नहीं, ताते जैसे अज्ञात घट का प्रकाशक ब्रह्म चैतन्य है तैसे ज्ञात घटका प्रकाशक भी ब्रह्म चैतन्य है, जिससे ज्ञातता को उत्पन्न करके ज्ञान भी नाश हो जाता है।

शंका– जैसे अज्ञान अज्ञातता को उत्पन्न करता है तैसे बुद्धि ज्ञातता को उत्पन्न करो चिदाभास सहित बुद्धि ज्ञातता को उत्पन्न करती है ऐसे क्यों कहते हो।

उत्तर– चिदाभासते रहित जो बुद्धि है सो ज्ञातता को उत्पन्न करने में सामर्थ न ही जिसको अप्रकाश रुप होने ते जैसे मिट्‌टी आदिक विकारी होने ते अप्रकाश रुप है तैसे विकारी बुद्धि भी चिदाभास ते रहित हुई अप्रकाशरुप है ताते ज्ञातता के उत्पन्न करने में सामर्थ नहीं है जैसे लाल, काली, आदिक मिट्‌टी करिके लीप्या हुआ घट किसी देषविषे किसी कालविषे ज्ञातता को प्राप्त नहीं होता तैसे बुद्धिमात्र करके युक्त घट ज्ञात न होता जिससे केवल बुद्धि को ज्ञातता को उत्पन्न करने को समर्थ नहीं है इससे घटविषे चिदाभास रुप फल की जो प्रकटता है सोई घटविषे ज्ञातता है।